॥ श्रीः ॥

ज्ञानदीपिका

अर्थात्

जैनोद्योत

जिसको

सत्यधर्मोपदेशक- बालब्रह्मचारि
श्रीमती पार्वती सतीजीने सं
सारिक जीवोंके उद्धार के लिये
बनाया

और

मेहरचन्द श्रावक हुशियारपुर वासी मालि
क संस्कृत पुस्तकालय सैदमिठ्ठा बाजार
लाहौरने छपवाया संवत १९४६ वि॰ में

॥ श्री ॥

ज्ञानदीपिकाजैन

प्रस्तावना

सो

इस ज्ञानदीपिका जैन ग्रन्थमें कुछक तो स्व
मत और पर मतका कथन है और कुछक
देव गुरू धर्म का कथन है और कुछक चतु
र्गति रूप संसार का अनित्य स्वरूप आदि
क उपदेश है और कुछक हिंसा मिथ्यादि
त्याग रूप और दया क्षमादि ग्रहण रूप
शिक्षा है ॥

और इस ग्रन्थका ग्रन्था ग्रन्थ २००० दो हजार

श्लोक का अनुमान प्रमाणहै और जो बुद्धिमान्
पुरुष उपयोग सहित्त इस ग्रन्थ को आदिसे अ
न्त तक पढेंगे तो अच्छा बोध रूप रसके लाभ
को प्राप्त करेंगे ॥

और कई एक मतावलंबी अनजान लो
क ऐसे कहत्तेहैं कि जैनी लोक नास्तिक मती
हैं अर्थात्त् ईश्वर को नहीं मानत्ते हैं

सो उनको इस ग्रन्थ के
द्वितीय भागके परमात्म अंग आदि अंगों के
बांचने से ऐसा भाव मालूम होजायगा कि
जैनी लोक इस रीतिसे त्तो ईश्वर सिद्ध स्वरू
प परमात्म पदको मानत्तेहैं।
और इस रीतिसे ईश्वर अर्थात्त् ठकुराई धारक
धर्म दाता अरिहन्त देव को मानत्तेहैं और इस
रीति से जैनी ईश्वर अर्थात्त् ठाकुर न्याय(इन्साफ)
हुकम राज काजके कारक रजोगुणी तमो गुणी

सतोगुणी राजा वासुदेव को मानतेहैं और इस री
तिसे चैतन्य को कर्मोका कर्ता और भोक्ता मानते
है और इस रीतिसे जैनके साधु यति सत्व तप
दया क्षमा निस्पृह प्रवृत्तिमें प्रवर्तकहैं॥
कोंकि जैनी साधु वा गृहस्थियों के नियम अर्थी
त् देशीभाषा असल कईएक संक्षेप मात्र आगे
गुरुअङ्ग वा धर्म प्रवृत्तिअङ्ग में लिखेंगे परंतुजैनी
लोक ऐसे नहीं मानतेहै कि कभीतो ईश्वर नि
रंजन निराकार और कभी गर्भादि दुःखमें फस
ना और कभी ईश्वर ब्रह्मज्ञानी और कभी बावला
होके रोताफिरा और कभी ईश्वर और कभी अ
नेक इत्यादि अपितु जैनीतो शुद्ध चैतन्य एका
त अविनाशी पदको ईश्वर मानतेहैं और संसार
को और पुण्य पापरूप कर्मको अनादि आस्तिक
भाव मानते हैं॥
सो हे बुद्धिमानो! पक्षपात छोडके विवेक दृष्टि

करके देखो कि इसमें जैनी लोक कौनसी बात अ
योग्य कहते हैं और नास्तिक कैसे हुए और जो
पुरुष जैनको नास्तिक कहते हैं वे जैनके और ना
स्तिक नास्तिक के अर्थ अनजान हैं क्योंकि नास्तिक
वे होते हैं जो पुण्य पापको और स्वर्ग नर्कको न
हीं मानते हैं आगे जो जिसकी समझमें आवै॥
इस ज्ञानदीपिका ग्रन्थके दो भाग हैं सो प्रथम भा
गमें तो आत्माराम संवेगी रचित जैनतत्वादर्श
ग्रन्थ है सो तिसमें जो २ शास्त्रोंसे विरुद्ध अर्थात्
सूत्र से अनमिलत कथन हैं तिनके जवाब स
वाल हैं और विरुद्धता को प्रकट करना और फि
र तिसका खंडन करना ऐसा स्वरूप है सो
जो पुरुष जैन मतमें दो प्रकारके श्रद्धानी हैं
एक तो मूर्ति पूजक और दूसरे निराकार
ध्याता, सो इनके अभिप्राय का जानकार होगा
और सूत्रका वाकिफ़ क़ार होगा सो समझेगा

नतो नहीं ॥ और
जो द्वितीय भागहै तिसमें जैनधर्म अर्थात्
क्षमा दया रूप जो सत्यधर्महै तिसकी पुष्टता
है सो द्वितीय भागका बांचना और समझना
हर एकको लाजमहै और इस भागके बांच
ने और समझने से हरएक पुरुष को ८आठ
प्रकार का बोध रूप लाभ होगा सो १प्रथम
तो देव गुरु धर्म का जानकार होगा। और
२ द्वितीय स्वमत परमत का जानकार होगा।
और ३ तृतीय विषय विकारादि आरंभ से
विरक्त होगा।
और ४ चतुर्थ अपने विकारादि अवगुणोंका
पश्चातापी होगा।
और ५ पंचम आरंभ के त्याग रूप व्रत(प्र
त्याख्यान) में उद्यम वान् होगा।
और ६ षष्ट अशुद्ध संकल्पोंकी निवृत्तिवालाहोगा।

और ७ सप्तम क्षमा दया रूप गुणका लाभ होगा। और ८ अष्टम जो गृहस्थीको धर्मकार्य के निमित्तमें प्रभातसे संध्यातक और संध्या से प्रभात तक जो २ करना योग्यहै सो तिसका जानकार होगा तस्मात् कारणात् द्वितीयभाग का वाचना बहुत श्रेष्टहै॥

(१) पाठक लोकोंको विदितहो कि इस परमोपकारी ग्रन्थको मुखकेआगे वस्त्र रखकर अर्थात् मुख ढांपकर पढना चाहिये क्योंकि खुले मुखसे बोलनेमें सूक्ष्म जीवों की हिंसा होजातीहै और शास्त्रपर (पुस्तकपर) थूकें पड़जातीहैं। और इसग्रन्थको दीपक (दीवे) के आश्रयसे न पढना चाहिये क्योंकि दीपक में अनेक जीव दग्ध होकर प्राणान्त होजाते हैं इसलिये दीपक स्मशान के तुल्य होजाताहै तस्मात् कारणात् प्रत्येक पुरुष को अनेक तरह की जीवहिंसा से बचकर शुद्ध भाव से

पक्षपात को छोड़ इस ग्रन्थके पूर्वापर विचार से सत्यासत्य को जानकर इस दुःख बहुल संसार से छुटकारा पानेका उद्योग करना चाहिये ॥ प्राग्

प्रथमभाग सूचीपत्रम्

॥ अथ ॥

द्वितीय भाग सूचीपत्रम्

विषय पृष्ठ

श्रीः

प्रार्थना

मैं सब परमधार्मिक जैनीभाइयेंओरचरणार विन्दों में विनत्ति पूर्वक निवेदन करताहूं कि इस उत्तम रत्न "ज्ञानदीपिका" ग्रन्थ को मैंने बहुत यत्न से छपवायाहै, औरआशा करताहूं कि आप लोग बड़ी प्रसन्नता पूर्वक इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ेंगे और अन्य सब भाइयों को भी दिखाकर इस मेरे परिश्रम को अवश्य ही सफल करेंगे

मेहरचन्द मैनेजर
संस्कृत पुस्तकालय
सैदमिठ्ठा बाज़ार
लाहौर
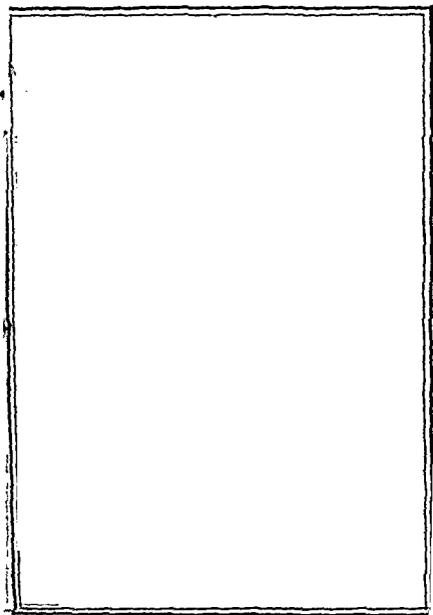
॥श्रीः॥

श्रीवीतरागायनमः

ज्ञानदीपिकाजैनग्रन्थ।

इस ग्रन्थका नाम ज्ञानदीपिका जैनयथार्थ रक्खा
गया है, जैसे कि अन्धकार में सार और असार व
स्तु का निश्चय नहोय तब दीपिका अर्थात् दीपक
की ज्योति करके देखने से यथार्थ भास होजाता है
तैसेही जैन मतजो शान्ति दान्ति क्षान्ति रूप है।
तिसके विषे जो श्वेताम्बरी अर्थात् श्वेत वस्त्र के धा
रने वाले जैनी साधु हैं तिनकी कालके स्वभाव अ
र्थात् हुण्डा पञ्चम आरा पञ्चम समा तथा व्यवहार
माया, कलियुग के प्रभाव से वर्त्तमान कालमे
दो प्रकार की श्रद्धा होरही है (सो) एकतो मूर्त्ति
पूजक अर्थात् निरागी देव जिनका जैनके शा
स्त्रों में यह प्रकट परमत्यागी परम वैरागी षट्
काय रक्षक सर्वारम्भ परित्यागी इत्यादि कथन है

सो उनकी मूर्ति बनाके सरागी कुदेवों की मूर्तियोंकी तरह गहना कपड़ा फल फूलआदि से पूजने का उपदेश करने वाले सो संवेगी कहाते हैं॥

और दूसरे जो आत्मज्ञानी अर्थात् स्वआत्म पर आत्म समदर्शी, सनातन शास्त्रों के अनुसार कठिन क्रियाके साधक और शान्ति दान्ति क्षान्ति आदि का उपदेश करने वाले सो ढूंडिये कहाते हैं सोई पूर्वक

संवेगी साधु आत्मारामजीने जैन तत्वादर्श ग्रन्थ छपाया है सो तिस ग्रन्थ को श्रवण करके अनेक जनोंको ऐसी शंका उत्पन्न होती है कि जैनतत्वादर्श ग्रन्थ में जो २ कथन है (सो) सबही न्याय है तथा अन्याय है सो तिस भ्रम रूपअन्धकार के नाश करनेके लिये यह ज्ञान दीपिका ग्रन्थ, दीपिकावत् रचा गयाहै क्योंकि इस ज्ञान दीपिका के बाचने और सुनने से जैनतत्वादर्श ग्रन्थमें जो२

पवी पर शास्त्रसे अमिलित अर्थात् विरुद्ध है त
या परस्पर विरुद्ध जो निसी ग्रन्थमे वावले की
लंगोटी की तरह आदमें कुछ और अन्तमे कुछ
जैसे कि जिस कार्य को प्रथम निषेधा है फिर
तिसी कार्य को नादशाही कथनसे अङ्गीकार
किया है तथा जो विलकुल ही झूठहै तथा जो
शास्त्रानुसार कथन लिखेहैं सो महा उत्तम और
सत्यहै इत्यादि स्वरूप इस ज्ञानदीपिका ग्रन्थके
वाचनें से बुद्धि अनुसार निरपक्ष दृष्टि से अच्छक
न्याय और अन्याय प्रकट होजावेगा इत्यर्थ ज्ञान
दीपिका ग्रन्थः॥

सो इस ज्ञान दीपिका ग्रन्थ के दो भागहैं
प्रथम भागका नाम जैनतत्त्वादर्श ग्रन्थ सूचक
और द्वितीय भागका नाम सत्यधर्म प्रकाश है।

अथ प्रथम भाग प्रारम्भः

दोहा ॥ पंच प्रमेष्टी पे नमुं सिद्धि साधक सुखदाय

तिस प्रसाद प्रकट करूं कछुक न्याय अन्याय १

अथ जैन तत्वादर्श ग्रन्थ में जो २ विरुद्ध लिखे हैं उनमें कितनेक विरुद्ध यहां लिखते हैं

आत्माराम संवेगीने जैन तत्वादर्श ग्रन्थ छपवायाहै उसमें त्यागी पुरुष साधुओं को ढूंडिये (नाम) संज्ञासे कहकर बहुत निंदा लिखीहै सो उसको हम उत्तर देतेहैं कि हे भाई! तुमको यह भी खबरहै कि ढूंडिये किस रीति से कहाएहैं सोई हम ढूंडिये कहाने का कारण लिखतेहैं जैसे कि

अनुमान १७१८ के सालमें सूरत नगर के निवासी जातिके श्रीमाल एक लवजी नाम शाहूकार ने वजरंगजी यतिके पास दीक्षाली और शास्त्र पढनेलगे फिर शास्त्रके अभ्यास होनेसे दीक्षा लिये पीछे दोवर्षके बाद जो भ्रष्टाचारी मठा व तंवी यति लोकथे उनकी शास्त्रोक्त क्रियाहीन

देखी को किस करके सोई उनकी क्रियाके शिथि
ल होनेका कारण भी कुछक पहले लिखदेतेहैं
(सो) ऐसेहै कि व्यवहार सूत्र की चूलिकामें
खुलासा लिखाहै कि बारह वर्षीयकालमें घणे सू
त्र विछेद जायंगे इत्यादि
सो विक्रमके साल ५३८ के लग भगमें बारह व
र्षीयकालपड़ासुनाजाताहैसो तिस कालके विषे घणे
तो सूत्र विछेदगये और तिस कालमें सा
धुका जो निरवद्य आचारथा सो हर एकसे पल
ना मुशकिल होगया और आचार वान् साधुतो
कोई विरलाही शूरवीर रहगया और घणे साधु
शिथिलाचारी और भ्रष्ट होगये कोंकि निर्दोष
आहार पानी मिलना मुशकिल होगया और क्षुधा
के न सहने करके आजीविका के निमित्त ज्योति
ष वैदगी आदि परूपने लगे और चैत्य स्थापन
मठावलंबी यति होगये जैसे कि यह मेरे गच्छ

का मंदिरहै अथवा यह मेरा उपाश्रयहै इत्यादि यथा सूत्र"चेइयं ठपावेइ दव्वाहारीणो मुणी भ विस्सइ लोभेण मालारोहण देउल उवहाण उद्यमण जिण बिंव पइठावण विहिउ माइएहिं वहवे" इत्यादि (सूत्र) अस्यार्थः
मूर्त्तिकी स्थापना करावेंगे, द्रव्य धारी मुनी घणे ही होजावेंगे, लोभ करके माला रोपण अर्थात् मूर्त्तिके कंठमें फूलोंकी मालाडालके फिर उस का मोल करावेंगे अर्थात् नीलाम करावेंगे, देहरे पांचे तप उजमण करावेंगे, जिन विम्ब प्रतिष्ठा करावेंगे, इत्यादि घणे पाखण्ड होजावें गे सो इस न्यायसे साबित होताहै कि यदि पहिले यह किया होती तो श्री५ भद्रबाहु स्वामी जी ऐसे क्यों कहते कि आगेको ऐसे क्रिया करने वाले होवेंगे॥

और आज कल देखनेमें भी बहुलता आर

हाहे कि ज्ञानभंडारा नाम रक्खके संवेगी लोक
मालकियत् करने लगगयेहै क्योंकि आत्माराम
जीनेभी जैनतत्वादर्श ग्रन्थके ४२७वें पत्र पर
लिखाहै कि चैत्य द्रव्यकी साधु रक्षाकरे अर्थात्
मालकियत् करे श्रावक को खाने नदेवे,तर्क,तो
फिर मालकियत् तो होगई इत्यर्थः॥ और घडा
मढा तपोटा पडूर पर पाउररा इत्यादि चोपडे
चीकने प्रवर्तनेलगे और संवेगी जी २ तथा यति
जी २ कहाने लगे क्योंकि
सूत्रों मे साधुको श्रमण तथा निर्ग्रंथ तथा भिक्षु
कहके लिखाहै जैसे कि पंचसय समणासिद्धिं सं
परिवुडे इत्यादि
परन्तु पचसय संवेगी सिद्धिं संपरिवुडे ऐसे कही
नही लिखाहै फिर औरभी शास्त्रोंके विषे साधुके अ
नेक नाम चलेहें यथा साध गुणमाले
दोहा॥ मुनी ऋषि तपसी सयमी,यती तपोधनसत,

श्रमण साध अणगार गुर वंदूं चित्त हर्षेत॥१॥
इत्यादि परन्तु यहांभी साधु को संवेगी नहीं लिखा
है कारणात् स्वछंद संवेगी कहानेलगे और आप
ने व्यवहार वसूजिव, बुद्धिके अनुसार ग्रन्थ रचा
ने लगगये और पूर्वक जिन बिम्ब प्रतिष्ठाआदि
करानेलगगये और तिस समय में जो कोई साधु
तथा साध्वी तथा श्रावक वा श्राविका, प्राचीन सू
त्रानुसार क्रिया साधक थे उनकी हीला निंदा कर
ने लगगये यह कथन सोला स्वप्नके अधकार
में खुलासाहै इति·
और भगवंत्त श्री ५ महावीर स्वामीजी के पीछे१७०
वर्षके लगभग ७ सप्तम पाट श्री ५ भद्रबाहु स्वामी
जीके पीछे संपूर्ण १४ पूर्वका ज्ञान तो विछेदगया
क्योंकि स्थूलभद्रजी १० पूर्वके पाठी हुएहैं और स्व
पनों केअंधकारमेंभी लिखाहै कि भद्रबाहुस्वामी
जी के पीछे श्रुतकेवली नहीं होवेंगे सोई भद्रबाहु

लासीजीके पीछेअनुमान ३०० वर्षके पीछे विक्र
म राजाका साल पत्र शुरुहुआ और जिसके पी
छे धर्मके समाज ऊपर अनेक२उपद्रव पड़ते
रहे कोंकि राजाओंके और बादशाहोंके दीन
आदिक के निमित्त अनेक क्लेश होते रहे औ
सेही गडबड होते२अनुमान साल ५०५के ल
गभग २७ वें पाट श्री ५ देवद्धी क्षमाश्रमनजी
आचार्य हुए और उनके समय में सूत्रोंकी
लिखित हुई और पूर्वका ज्ञानतो विछेद होही
चुकाथा परन्तु जितना उस समयमे सूत्र ज्ञान
था उतना लिखानहीगया और जितने सूत्र लि
खेगयेथे उनमे से ९३८ के सालके लगभग वा
रह वर्षीयकालमें कईएकतो विछेदगये और
कईएक भंडारोंमे दबे पडे रहे और पूर्वक
यति लोक ग्रन्थादि रचाते रहे और ११२० साल
के लगभग सूत्रोंकी टीका रचीगयी सुनीजातीहै

और ऐसेही श्री ५ सुधर्म स्वामीजी की परंपरा थी, विरुद्ध बाहुलता अन्य २ श्रद्धा और अन्य २ गच्छ अन्य २ समाचारी प्रवर्तक यति लोक ब हुत होतेरहे और यथार्थ सूत्रोक्त चारी थोड़े ही होतेरहे क्योंकि श्री ५ भद्रबाहु स्वामी कृत कल्पसूत्रं श्री ५ भगवंत महावीर स्वामी निर्वाण कल्याण कथनम् "सक्कत इन्द्र व के भगवते श्री ५ महावीरे जन्म रासीउद्रभस रासी ग्रहे स्मागते ३३ कारणात्त् जिन शासणे दो सहस्र वर्षेना उदय पुया भविस्सइ" तस्मात् कारणात्त् अनुमान १५३१ के साल दो हजारवर्ष पूर्ण हुएथे कि नगर अहमदाबादका निवासी जातिका वैश्य, नाम लोंका, तिसने सावद्य व्या पार अर्थात् वाणिज्य छोड़के आजीविका के निमित्त यतियोंके पाससे पराचीन अचारा ङ्गादि भंडार गत जो शास्त्रथे उनमेंसे लेकर

कई एक शास्त्रोंका उद्दार किया अर्थात् लिखे
और पढे फिर पुरानें शास्त्रोको देखके लोंका
बहुत विस्मित हुआ कि अहो (इतिआश्चर्ये)
शास्त्रोंके विषेतो साधुका परमत्याग वैराग
आदि निरवद्य व्यवहार और निरवद्य उपदे
शहै और ये यतिलोक तो उक्तोक्त ग्रंथानु
सार सावद्यक्रिया प्रवर्तक और प्रवर्तावक
हैं और बहुल संसार विधारकहैं, इति। फिर लों
का शास्त्रोंको सुनाकर बहुत लोकों को यथा
र्थ मार्गमें प्रवर्तानेलगा और पूर्वक यतिलो
कों का उसमें अपमान होनेलगा तब यतियों
ने लोंकेको सूत्रदेने बंद करदिये फिर लोंके
के मुखसे प्राचीन शास्त्रोंका सत्यउपदेश सु
नकर लक्ष्मीपति सेठ आदिक बहुत जन
सनातन क्रिया साधक होगये और शास्त्रानु
सार क्रिया साधक त्यागी साधुज्ञानजी आचा

र्यको ढूंडके उनके पास पैंतालीस पुरुष,
दीक्षा लेकर देशांतरोंमें शास्त्रोक्त उपदेश
करके जिनधर्म दिपानेलगे ततः तासमय
जिन शासनका उदय होताभया॰ इति॰
और संवेगी लोकभी ऐसे कहतेहैं कि ढूंडि
क मत कुछक ज्यादा ४०० च्यार सौ वर्षसे
निकलाहै सो सत्यहै परन्तु पूर्वक परमा
र्थ को अंगीकार नहीं करतेहैं क्योंकि सत्का
त इंद्रके कहनें बमूजिब तो पुराने शास्त्रा
नुसार सनातन धर्म प्रकट भया इति॰
इस रीती से पूर्वक यतिलोकोंकी क्रियाहीन
होरहीथी सोई पूर्वक यतियोंकी लवजीना
म यतिनेक्रियाहीन देखकरअनुमान१७२०
के सालमें अपने गुरुको कहने लगे कि तु
म शास्त्रोंके अनुसार आचार क्योंनहीं पालते
तब गुरुजी बोले कि पञ्चम कालमें शास्त्रो

क्त सयएगो किया नहीं होसक्ती तब लवजी बोले कि तुम भ्रष्टाचारी हो मैं तुम्हारे पास नही रहूंगा मैं तो शास्त्रोंके अनुसार क्रिया करूंगा जब उसने मुखवास्त्रिका मुखपर लगाई और दो चार यतियोंको साथ लेके देश देशमें फिरने लगे फिर उन शहरोंमें जो२ भ्रष्टाचारी यतियोंके वहकाये हुए लोकथे वे लवजीके कठन मार्ग को देखकर अर्थात् कठन वृत्तिको देखकर कहने लगे कि हे महाराज! तुमने यह कठन वृत्ति कहां से निकाली है तब लवजी महाराज बोले कि हमने पुराने शास्त्रोंमें से ढूंडकर निकाली है यथा "ढूंडत ढूंडत ढूंढलिया सब वेद पुराण कुराणमें जोई। ज्यों दही मांहीसुं मक्खन ढूंडत त्यों हम ढूंडियों का मत्त होई॥ जो कछु वस्तु ढूंडे ही पावत विन ढूंडे पावत नहीं

कोई. त्योंहम ढूंढ्यो धर्म दयामें जीव दया विन धर्म न होई ॥ ९ ॥

तब परस्पर लोक यों कहते भए कि यह वह यति है जिनोंने ढूंडके क्रिया साधी है ऐसेही ढूंढिया २ नाम प्रसिद्ध होगया और उनकी दमितइन्द्रियपन रागरंग विषियादि. विरक्ति जप तप रूप समाधि को देखकर व हुत शिष्य होगये जो किसीको इसमें शं का उत्पन्न होय तो जैनतत्वादर्श ग्रन्थमें से सहीह करलेना, क्योंकि वहांभी ५५९ पत्र पर यह लवजीका कुछक कथन है और जो कोई मत पक्षी ऐसे कहे कि लवजीने उक्त से नवीन मत निकाला है तो फिर उसको यह उत्तर देना चाहिये कि उस लवजीने तो कोई उक्त शास्त्र नहीं रचाये क्योंकि जै नतत्वादर्श रचाने वालेने भी शास्त्रोक्त

क्रिया करने परही लवजी का गुरुसे विवाद (तकरार) हुआ लिखाहै परंतु नवीन मत वा नवीन शास्त्र बनाने से तकरार हुआ ऐसे कहीं नहीं लिखाहै सोई पूर्वक मत पक्षीका कहना ऐसाहै कि जैसे कल्पवृक्ष अपने हाथसे लगाकर फिर कहना कि यह तो धतूराहै। और यदि किसीको यह कथन सुनके ऐसी शंका उत्पन्न होय कि

पहिले मुखवास्त्रिका मुख पर नथी जो लवजीने मुख पर वांधी है

तो उसको यह उत्तर देना चाहिये कि उन दिनोंमें पूर्वक कारणसे मुखवस्त्रिका मुखपर लगाने वाले, सूत्रानुसार क्रिया करने वाले साधु कहीं २ दूर २ क्षेत्रोंमें कोई २ विरले होंगे इससे लवजीकी मुखवास्त्रिका मुखपर लगानी नवीन मालूम हुई और दूसरे वह लव

जी मुखवस्त्रिका रहित यतियोंका शिष्यथा इससे नवीन मालूम हुई सोई लवजीने सूत्रा नुसार मुखवस्त्रिका मुखपर लगाई और जो कोई ऐसे कहै कि मुखवस्त्रिका मुखपर लगानी कहां चलीहै तो उसको यह पूछना चाहिये कि मुखवस्त्रिका हाथमें रखनी कहां चलीहै सो असल अर्थतो यहहै कि मुखपर रहै सो मुखवस्त्रिका और जो हाथमें रहै सो हाथवस्त्रिका और फिर कोई ऐसे कहै कि मुखवस्त्रिका तो चलीहै परंतु डोरा कहां चलीहै तो उसको यह कहना चाहिये कि रजो हरणकी फली अर्थात् दशियोंमें डोरी पावणी कहां चलीहै और के तारकी और के हाथकी चलीहै इत्यादि

सो अब इनदिनोंमें उन लवजी महाराज के आमनाय के साधु महात्माउदयचंदजी

विलासरामजी मोतीरामजी जीवनराम
जी आदि बहुतहैं

सो ऐसे त्यागी वैरागी साधुओंको
ढूंडिये नामसे आत्माराम संवेगीने जैनत
त्वादर्शग्रन्थमें आदिके तृतीय पत्र पर लि
खाहै कि ढूंडिये दुर्गति अर्थात् नर्क पड़
ने के आधिकारीहैं और अपने आपको बहु
त पण्डित करके मानाहै और उनोंने जैन
तत्त्वादर्शग्रन्थ छपायाहै सो उसमें क्या २
कथन है सो

हम यहां नाम मात्र लिखतेहैं कुछक तो
अन्यमत वाले अर्थात् वेदांतियोंके और
वैस्नवोंके और शैवोंके इत्यादि मतोंके नि
न्दारूप कथन लिखेहैं सोई कुछक तो
उन्हीके शास्त्रोंके अनुसार और कुछक
कल्पित कुनने करीहैं और कुछक प्रश्नो

नर करके पूर्वक मतावलम्बियों को रोका भीहै क्योंकि पिछले आचार्य षट् मतके न के शास्त्र रचगयेहैं सो उनशास्त्रोंकेवमूजिव वहुत ही परिश्रम करके इस ग्रन्थमें लिखित करीहै और कईएक प्राचीन शास्त्रोंमें से जैन आमनाके अवतारोंका और गुरूनि ग्रन्थका और धर्मका कथन कियाहै और कईएक पूर्वोंके ज्ञान विछेद हुए पीछे यतिलोकोंनें कुछ तो प्राचीन शास्त्रानुसार और कुछ अपनी बुद्धि अनुसार से ग्रन्थ रचायेहैं सो उनमेंसे श्रावकवृत्ति आदिक का कथन लिखाहै सोई जो प्राचीन शास्त्रोंके अनुकूल कथन कियाहै सोतो बहुत सुन्दर और सत्यहै, और जो नवीन शास्त्रोंसे तथा अपनी युक्ति (दलील) से लिखाहै सो कुछ संभवहै, और कुछअसंभवहै, क्योंकि उसमें कुछ

सावद्य, निरवद्यका विचार नहीं कियाहै, और
नहीं कुछ जिनकी आज्ञा वा अनाज्ञा का विचा
र कियाहै, और कुछक देशा टन करने के
कारण, सुनी सुनाई भ्रमजनक कल्पित
कहानियें लिखीहैं, और कुछक मठावल
येने जो अपनी पटावली रचीहैं सो उनमेंसे
कथन लिखाहै, और कुछक सारमीसप्र
ग्रही कुगुराका कथन लिखाहै, और कुछक
अभिमानके वशहोकर पूर्वक ढूंडिये साधुओं
के वडे माननीय महात्माओं की निन्दारूप क
हानियें बनाकर लिखीहै परंतु असत्य बोल
ने वा लिखने से मनमें कुछ भय नहीं कि
या और कुछक अपने वडे पुरुषोंके विद्या
मत्र आदि उनकी असंभव, मिथ्याही वडाइयें
लिखीहै सो इत्यादि कथन जैनतत्वादर्शग्रन्थ
में आत्माराम संवेगीने स्वकपोल कल्पित और

अनर्गल रचे हैं

यदि इसमें किसी पुरुषको शङ्का उत्पन्न होतो उसी जैनतत्त्वादर्शमें देखकर निश्चय करले ना और जो २ जैनतत्त्वादर्श ग्रन्थमें विरुद्ध हैं उनमें से अब हम कईएक विरुद्ध यहां व न्नगी मात्र लिखतेहैं यथा

(१) प्रथम जैन तत्त्वादर्श ग्रन्थ के ५७४ वें पत्र में लिखाहै कि ११४५ के सालमें जन्म ५ वर्षके ने दीक्षाली और ८४ चुरासी वर्षके होकर काल करा, १२२९ के सालमें देवचन्द्र सूरिजीके शिष्य, हेमचन्द्र सूरिजी हुए उनको लिखाहै कि तीन कि रोड़ ग्रन्थ रचेहैं, सो प्रथम तो पांच वर्षके को दीक्षा लिखीहै सो विरुद्ध अर्थात् झूठहै क्यों कि सूत्रमें ५ वर्षके को दीक्षा देने वाला जिनाज्ञा से बाहर लिखाहै॥ यथा व्यवहार सूत्रके १० दशा वें उद्देशेका १९वां सूत्र "नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्ग

त्थिएांवा खड्डुअंवा खुड्डिअंबा उस्सटवास जायं उवठावित्तएवा सभुंजित्तएवा " इति वचनात् अस्यार्थ.

नंही कल्पे अर्थात् नही जिनकी आज्ञा साधुको वा साध्वीको छोटा बालक अथवा छोटी वालिका, कैसा, बालक, जन्मसे आठ वर्षसे कुछभी न्यून होय ऐसे बालक को दीक्षामें उठाना अर्थात् दीक्षित करना (साधुबनालेना) न कल्पे इत्यादि

तथा श्री भगवती सूत्र सत्तक २५ उदेशा ६ "समायक चारित्रकी तिथि उत्कृष्टी नवहि वासे ऊणि या पुव्वकोड़ी" इति वचनात् समायक चारित्रकोड पूर्वकी आयुवाला लेवे तो ९ वर्ष ऊन कोड़ पूर्व संयम उत्कृष्ट पाले अर्थात् ९ वें वर्षमें दीक्षालेवे इस प्रकार सूत्रके न्यायसे ५ वर्षके को दीक्षादेनी लिखी

सो विरुद्ध है ॥

(२) द्वितीय, तीन किरोड़ ग्रन्थ रचे लिखे हैं सोभी झूठ है क्योंकि ८४ वर्षों के ३६० दिन के हिसाव से ३०२४० तीस हजार दोसो चालीस दिन हुए सो यदि एक २ दिन में १०० सो २ ग्रन्थ रचते तोभी ३०२४००० तीस लाख चोवीस हजार ग्रन्थ होते, सो हे संवेगीजी! आप अपने पूर्व पुरुषों की ऐसी अनहुई उपहास योग्य वड़ाई करते हो कि अत्यन्त मति अन्ध और पासर होगा सो ऐसे विकल वचन को प्रतीत करेगा। तर्क-जो तुम हमारे इस कहने पर अपने लिखे को असंभव जानकर ऐसी शरण लोगे कि हम ग्रन्थ संज्ञा श्लोक को कहते हैं तो ऐसेभी तुम्हारा लिखाहुआ तुमको शरण नहीं लेनेदेता क्योंकि ५९५ वें पत्र पर लिखा है कि "यशो विजय गणिने १०० सो ग्रन्थ रचे

हे तो फिर वे भी श्लोकही ठहरे तो ऐसे पण्डि
तों की १०० श्लोकोंके वास्ते क्या बड़ाई लिखने
लगेथे और ऐसेतो होही नहींसक्ता कि कहीं
तो ग्रन्थको ग्रन्थ और कहीं श्लोकको ग्रन्थ क
हा क्योंकि सूत्रोंके विषे श्लोक का नाम कहीं
ग्रन्थनहीं लिखा जहां कहीं श्लोकोंकी संख्या क
री जातीहै तो वहांऐसे लिखाजाताहै कि"ग्रन्था
ग्रन्थ ५०० तथा ७०० इत्यादि"क्योंकि ग्रन्थनाम
बहुतों के मिलनेसे होताहै और आत्मारामजी
नेभी जैनतत्वादर्श के आदमे ऐसे लिखाहै
कि इस ग्रन्थका १८००० श्लोकका अनुमान प्र
माणहै॥तर्क जो श्लोकका नाम ग्रन्थथा तो ऐसे
क्योंनहीं लिखा कि"इस पोथेके १८००० ग्रन्थहैं"
और जो देवीका वरथा यह कहोगे तो भूतविद्या
अप्रमाणीकहै और जो लब्धी कहोगे तोभी अप्र
माणहै क्योंकि लब्धका तो विछेद होगया है।

इसलिये तुम्हारा लिखना कि "हेमचन्द्र सूरिने ३ तीन क्रोड ग्रन्थरचे" यह किसी सूरत सहीह नहीं होसक्ता किन्तु यह केवल मानके वशहोकर निकम्मी बड़ाई, गोलगप्पे रूप रूठही लिखीहै॥

(३) सूत्रोंसे महा विरुद्ध लिखाहै सो पत्र १९ वें से लेकर कईएक पत्रोंमें प्रायः बहुतसे विरुद्ध लेखहैं क्योंकि २४ चौवीस तीर्थङ्करों के दीक्षा वृक्ष लिखेहैं लेकिन सूत्रसें दीक्षावृक्ष नहीं चले किन्तु सूत्रमें "चेईवृक्ष" अर्थात् ज्ञानवृक्ष चलेहैं कस्मात् जिस २ वृक्षके नीचे केवल ज्ञान, तीर्थङ्करोंको प्रकटभया, अस्मात्-यह समवायाङ्ग में देखलेना, लिंगियों को लिखना चोवीसोंई बोलोंमें विरुद्धहै॥

(४) पद्मप्रभुजी को "एक उपवाससे योगलिया"

लिखाहै यहभी सूत्रसे विरुद्ध अर्थात् झूठहै
(५) वासुपूज्यजी को दो उपवास से योग लि
या लिखाहै यहभी झूठहै क्योंकि समवा
याङ्ग सूत्रमें पद्मप्रभुजीको दो उपवास और
वासुपूज्यजी को एक उपवास से योग लिया
लिखा है ÷ (६) मल्लिनाथजी का
जन्म कल्याण मथुरा नगरीमें लिखाहै यह
भी झूठहै क्योंकि ज्ञातासूत्रमें मिथिलानगरीमें
लिखाहै ÷ (७) मल्लिनाथजीकाएक
दिन रात छदमस्तरहे लिखाहै यहभी झूठहै क्यों
कि ज्ञातासूत्रमें उसी दिनके वलीऊए लिखाहै ÷
(८) मल्लिनाथजीका केवल कल्याण, मथुरा नग
रीमें लिखाहै यहभी झूठहै क्योंकिज्ञातासूत्रमें मि
थिलानगरीमेंलिखाहै॥ (९) नेमिनाथजी
का दीक्षा कल्याण, शौरिपुरमें लिखाहै यहभी झूठहै
क्योंकि समवायाङ्ग सूत्रमेंतथाउत्तराध्यनमेंद्वारिकान

गरीमें लिखाहै॥ (१०) अथ परस्पर विरोध (जो आत्मारामने जैन तत्वादर्शमें लिखाहै सो) लिखतेहैं पत्र १०वें पर "श्रीऋषभदेवजीकी दोनोंसाथलोंपे वृषभकालछनलिखाहै" फिर पत्र ९५ वें पर २४ चौवीसों तीर्थङ्करों के पगोंमें लछन हुए लिखाहै यह परस्पर विरुद्धहै॥

पत्र ८३ वें पर लिखाहै (अनुष्टुब्वृत्त) श्लोकः॥

महाव्रतधराधीरा, भैक्षमात्रोपजीविनः। समाकिस्थाधर्मोपदेशका गुरवोमताः॥१॥ इस श्लोकमें ऐसा परमार्थहै कि साधु धर्मोपदेश जीवोंके उद्धार केलिये करे ज्ञान दर्शन चारित्र का परंतु ज्योतिष, यन्त्र मन्त्रका उपदेश धर्म हानि करने वालाहै सो नकरे॥ फिर पत्र ५७ वें पर लिखाहै कि धर्मघोषसूरिने मन्त्र से स्त्रियोंको पकड़ाया और बांधाथा। तर्क-जेकर तुम ऐसा कहोगे कि उन्होंने अपने दुःख

टालनेके लिये बांधाथा तो हम उत्तर देंगे कि मन्त्र आदिकका करना वा कराना क्या अपने दुःख टालने के वास्ते होताहे किम्वा पराये दुःख टालने के वास्ते? और विना कारण तो कोईभी विद्या मन्त्र नही फोरताहे सोई सूत्र मे तो काम पड़ेभी मन्त्र आदिक विद्या फोरने की आज्ञा नहीहे प्रत्युत (वलकि) सूत्रमें तो ज्योतिषविद्या फोरनेवालेको पापीके समान कहाहे उत्तराध्यन १७ वांतथा अध्ययन २०वांगा था ४५ वी "जलक्खणं सुविणं पउञ्जमाणे निमित्तकोऊ हलसंपगाढे कुहेडविज्जा सवदार जीवी नगच्छई सरणं तंमिकाले॥१॥

और तुमनेभी अपने हाथोंसे ५३०वें पत्रपर लिखाहे कि विस्नुकुमार साधुने सम्पूर्ण भारत खण्डके साधुओंके वचाने अर्थात् महायरोपकार धर्मके कारण लब्धी फोरीथी

और फिर लिखाहै कि उसने दण्डभी लिया था से विचारना चाहिये कि जब ऐसे महा उत्तम कार्यके कारणभी लक्षीफोरने का दण्ड लियाथा तो फिर "सामान्य कार्यस्य किंकथनं" अर्थात् सामान्य कार्य का क्या कथन करना तो फिर तुमने मन्त्र करने वाले यतियों की जैसे ५६३ वें पत्रपर "सिद्धसेन दिवाकरने विद्यादेकर अर्थात् सिखाकर राजासे सेना बनवाके संग्राम करवा दिये" ऐसी २ वड़ाई किस प्रयोजन से करीहै और क्यों लिखीहै और तुमनेभी ९ नवम परिच्छेदके आदमें ओदा जिसको सूत्रमें पाप सूत्र कहाहै उसका बहुत उपदेश कियाहै फिर औरभी बालकों कैसे उपहास योग्य हूमन रामन बहुत से पाखण्ड लिखेहैं जैसे कि ४५० वें पत्र पर लिखाहै कि "अपनी स्त्रीको वार२

सराग नेत्रोंसे देखे और रूठगई होतो मना लेवे इत्यादि और पत्र ३९९ पर लिखाहै कि दांतन रोज रोज करे फिर दांतन करके साह्मने ही फेंके परन्तु आसपासकोन फेंके और जो दांतन न मिले तो १२ बारह कुरले ही करलेवे॥ (सो) भला बुद्धिमानों को विचारना चाहिये कि इन रेड़कोंसे क्या सिद्धि होती है और क्या ज्ञानदर्शन चारित्रकी आराधना होतीहै और क्या जिनआज्ञा,अनाज्ञा की आराधना होतीहै॥ तर्क जेकर कहोगे हमने तो उपदेश नहीं किया यहतो व्यवहार हीहै तो फिर हम उत्तर देंगे कि जो उपदेश नहीथा तो फिर तुमने व्यवहार रूप मगज पच्ची और लिखनेमें निरर्थक परिश्रम (मिहनत) क्यों किया सो हेभाई! येबातें किसी बुद्धिमान् त्यागी पुरुष के हृदयमेंतो

वेठनें की नहीं और मूढ़ोंके तथा स्वपक्षि
यों के हृदयमें तो दांत घसनी करके वैठाही
देते होंगे यह स्थूल (मोटा) परस्पर विरोधहै
॥ ११ ॥

पत्र १०७वें पर लिखाहै कि "हिंसामें धर्म न
हीं कहना चाहिये वन्ध्यापुत्रवत् और हिंसा
कारण धर्म कार्यहै" यह कथन को भी
लिङ्गियेनें असत्य लिखाहै

फिर देखो मत पक्ष करके हिंसामें धं
र्म प्रत्यक्ष कहते हैं तर्क० जेकर क
होगे कि वह तो मिथ्याती मृगादिक वड़े२
जीवोंके मारने में अर्थात् हिंसामें धर्मकह
तेहैं इस वास्ते उनकी हिंसामें धर्मकहना असत्य है
तो फिर हमतुमको पूछेंगे कि यह क्या बुद्धिकी वि
कलता है कि वडे२ जीव अर्थात् मृगादि मार
ने में हिंसाहै और लघु जीव अर्थात् मूषककी

कीटक आदि मारने मे दोष(हिंसा) नहीं है ॥
जैसेकि मन्दिर सञ्ज्ञक गृह (मकान) वनवा
नेमें पंजावे लगाये जातेहैं तो वहां स्थूल जीवों
के घणे प्राण नाशहोतेहैं तो सुक्ष्म जीवोंकीका
वातकहे जैसे तुमने ९ नवम परिच्छेद में
लिखाहै कि "मन्दिर वनवानेमें पर्वतको ची
रके शिलादि के स्तम्भआदि वनवानेमें दोष
नहीं वल्कि सम्यक्तकीशुद्धताहै" फिरतुमनेइसपर
हेतु दियाहै कि वैद्य (हकीम) रोगीके नस्त्र
आदिक मारे, यदि वह रोगी मरजाय तो वैद्य
(हकीम) को दोष (इलजाम) नहीं क्योंकि हकी
म तो रोग गवानेका अभिलाखीहै पर मारने
का अर्थी नहींहै इस कारण दोष नहीं ऐसेही
पूजा आदिकर्म करनेमें जल और निगोद आ
दिकस्थावरादिकी हिंसा होनेका दोषनहीं. क्योंकि
हमतो मक्तिके अभिलाखीहैं परन्तु त्रसथावर

की हिंसाके अभिलाषी नहींहो उत्तर पक्षी, नर्क-
हे भाई! इस छुन छुनोंकी पुकार(आवाज)से
तो केवल बालकही रीझेंगे और बुद्धिमान लो
ग तो तत्व की ओर ख्याल करेंगे तूंबे
और लड़के के दृष्टान्त, क्योंकि तुमने जो हिंसा
में धर्म अर्थात् फूल तोड़नेमें तथा वृक्षछे
दनमें दोषनहीं लिखाहै जैसे ४७४वें पत्र पर
लिखाहै कि "सनातन पूजामें फूलोंका घर बना
वे और केलीघर बनावे" इत्यादि॰
हकीम के दृष्टान्त से भव्य जनों के हृदयों को
कठोर करतेहो लेकिन इस हकीम के दृष्टान्त
को विचार करदेखो तो तुम्हाराही लिखाहुआ दृ
ष्टान्त तुम्हारेही मतकोनिकृष्ट करताहै क्योंकि
हकीम तो यह जानताहै कि नस्त्रके लगाने
से रोगीका रोग जातारहेगा शायद ही मरेगा
और तुम तो खूब जानतेहो कि केलेके स्तम्भ

को काटेंगे तो केलेकीजड़मेंके जीव असङ्ख्या
त तथा अनन्त निश्चयही मरेंगेऔर त्रस
जीवभी बहुत मरतेहैं क्योंकि सूत्र दशवै
कालिकवाआचाराङ्गमें कहाहै यथा "रुद्दे सु
वा रुद्धपइ ठेसुवा" इतिवचनात्

फिर औरभी सुनो कि तुम्हारा हकीम
का दृष्टान्त बिल कुल अयोग्य और झूठ है
क्योंकि हकीम तो रोगीकी और रोगीके सम्ब
न्धियों (वारिसों)की आज्ञा से नस्त्र मारताहै
और वह रोगी अपने आरामके वास्ते कह
ताहै कि हेहकीम! मेरे नस्त्रमार मैं चाहे मरूं
चाहे जीऊं, सो इस कारण हकीम को दोष
नहीं, अगर वह हकीम रोगीकी और रोगी के
वारिसा की आज्ञा बिना ज़बर दस्ती से नस्त्र
उसके पेटमें घसोडदेवे और फिर वह रोगी
मरजाय तो देखो वह हकीम क्योंकर दोष

अर्थात् इसज्ञान से दचसक्ताहै इत्यर्थ। सो हे पूर्वपक्षियो! तुमतो त्रसस्थावरों की मर्जी के विना अर्थात् आज्ञाके विनाही प्राण हरते हो क्योंकि वे वृक्ष, फल, फूल आदिके जीव, नहीं चाहतेहैं कि हमको भगवान की पूजा के निमित्त वेशक मारें और न कहते हैं कि भक्तिमें हमारे प्राण वेशक हरें इसकारण से वज्रदोष आता है यथा-

अन्यस्थाने करोति पापं धर्मस्थाने विवर्जितम्॥ धर्मस्थाने करोति पापं वज्रकर्म: विवर्द्धते॥१॥ इतिवचनात्

और तुम ऐसे कहोगे कि कहांतो मृगादि हिंसामें धर्म कहना और कहां तुम फूल फल आदिक की हिंसाको निंदते हो तो फिर हम उत्तर देतेहैं कि उनका हिंसा में धर्म कहना और तुम्हारा हिंसामें धर्म

कहना ये दोनों समहीहैं क्योंकि यद्यपि मिथ्या दृष्टियों के शास्त्रमें स्थूलही प्राणियोंमें जीवास्तित्व मानाहै और स्थावरोंमें जीवास्तित्व नहीं मानाहै, तथापि तुम्हारे शास्त्रोंमें ठाम २ वीतराग देव स्थावर वनस्पति आदिकमें सूच्यग्र समानमेंभी असङ्ख्यात तथा अनन्तही जीव कहेगयेहैं इस कारण तुम्हारा वनस्पति आदिक की हिंसामें धर्म कहना पूर्वक मिथ्यात्वियों के तुल्यही श्रद्धानहै और यहतो होही नहींसक्ताहै कि मिथ्यात्वियों को हिंसामें धर्म कहना वन्ध्या पुत्रवत् झूठहै और समदृष्टिको हिंसामें धर्म कहना सत्यहै जैसे कि लायक वंद इज्जतदार और उत्तमकुलोत्पन्न विवेकी पुरुषों को तो शराब पीना, चोरीकरना, और गालीदेना युक्तहै और लुच्चोंको नंगोंको

ओर हीनाचारी नीचोंको अयुक्तहै सो
हे मतमस्तो! विचार करदेखो कि तुम्हारा
लिखाहुआ तुम्हारेही कहने वमूजिब
परस्पर विरुद्धहै॥

२९८ वें पत्र पर लिखाहै कि द्रव्यनिक्षेपा
जो तीर्थंकर होनेवाला है, जिसका निका
चित्त बंध होचुकाहै उसको पूजके, नम
स्कार करके अनेक जीव मुक्तिमें गयेहैं॥
तर्क० यह लेखभी झूठहै क्योंकि इस री
तिसे एक पुरुषको तो मोक्षप्राप्त होगया
सूत्र द्वारा दिखातेहो किम्बा जबान सेही
गरड़ाट करतेहो? कस्मात् कारणात् कि
निकाचित बंध तीर्थंकर गोतका ३ तीन
भव पहले पड़ताहै।भला कहीं भर्थचक्री
की भुलावन देतेहो फिर और भाव नि
क्षेपमें सीमन्धर स्वामी मानेहैं॥ तर्क० सो

हमभी तो भाव निक्षेपेमें सीमन्धर स्वामी अर्थात् वर्त्तमान तीर्थंकर अतिशय संयुक्त विचरतेहों उन्हींको भाव तीर्थंकर मानते हैं

और तुमतो प्रत्यक्ष प्रतिमा में चारों निक्षेपे मानतेहो तो फिर तुमने भाव निक्षेपेमें मूर्तिको क्यों नहींलिखा? सो तुम्हारा लिखना तुम्हारेहीकहनेवम्जिव विरुद्ध है १३॥ २४६ वें पत्र परलिखा है कि लोकोत्तरमिथ्यात्वहहै कि जो भगवान की प्रतिमाको इसलोक के हेतु पूजे, जैसे कि यह काम मेरा होजावेगा तो मैं पूजा कराऊंगा और छत्र चढ़ाऊंगा यह "मिथ्यात" है

फिर पत्र ४१२ वें पर लिखाहै कि "द्रव्य लाभके वास्ते पीलेवस्त्र पहरके पूजा करे

और शत्रु जीतनेके वास्ते कालेवस्त्र पहरके पूजाकरे और ऐसे २ अनेक इस लोक के अर्थ पूजाके फल लिखेहैं (सो) यह कांकि मली की नाथ कभी नाक कभी हाथ क्योंकि प्रथम उसी कामको निषेधाहै और फिर उसी कामको अङ्गीकार कियाहै यह परस्पर विरुद्धहै ॥२४॥ और ४१२वें पत्र पर लिखाहै कि "घृत, गुड़, लवण आदिमें गेरे और दान तप पूजा, सामायिक फटे कपड़ोंसे करे तो निष्फल" इसलेखको

हम खण्डन करतेहैं उत्तराध्ययन, अध्ययन १२ वां गाथा ६ ठी हरकेशी बल तपस्वीको ब्राह्मण कहतेहुये यथा उक्तंच "उम चेलए पंसु पिशाय भूए संकर डुसं परि हरिए कंठे" इति वचनात् अस्यार्थः असार वस्त्र रजकरी पिशाच रूप उकरडी के नांखे समान वस्त्र धारण

है कएठ इत्यर्थः॥हरकेशीवल साधु के ऐसे
फटे कपड़ेथे जो ब्राह्मण कहतेथे कि रूड़ी
के उठाये ह्रए कपड़ेहैं॥ तर्क• तो फिर हरके
शीजीका तप निष्फल तो नह्रआ क्योंकि वे
तो तपके प्रभाव से केवल ज्ञान पाकर मुक्ति
में गयेहैजो फटे कपडों से तप निफल होजा
ता तो केवल ज्ञान और मुक्ति कहांसे होती,
सो लिङ्गिये का कहना स्त्र थकी विरुद्ध है
क्योंकि फटे कपड़ों से तप, जप, दान, सामायिक
निफल कदापि नही होगा, जैसे कि कोई फ
टे कपड़े पहर कर खीरखाय तो क्या सुखमी
ठा नहीं होगा और क्या पुष्टि नहीं होगी अपि
तु अवश्यमेव होगी इसी दृष्टान्त से, फटे
वस्त्र वाले पुरुष का कराह्रआ सत्कर्म निष्फ
ल कैसे होगा हां अवलत्ता लिङ्गियों की समझ
ऐसी होगी कि फटे कपड़ेमें को जप तपह्रए

जाताहै अपितु ऐसे नहीं उनका यह लिख
ना झूठहै॥१५॥ पत्र ३७१वें परलिखाहै
कि "आवश्यक सूत्रमें लिखाहै कि सामाजि
कमें देव स्नान पूजादिक नकरे। तर्क क्यों
कि इससें ऐसा संभव होताहै कि उत्तम का
र्यमें मध्यम कार्य संभवही नहीहै अर्थात्
संवर में आस्रव न करे इस वास्ते सामाजिक
में पूजा निषेध करीहै॥
फिर ४१७वें पत्र पर लिखाहै कि सामाजिक
तो निर्धन श्रावक करे पूजाकी सामग्रीके
अभाव से फिर लिखाहै कि पूजाहोती होतो
सामाजिक बीचमेंही छोडकर पूजामें फूल
गूंथने बैठजाय क्योंकि पूजाका विशेष पु
ण्यहै यह देखो परस्पर विरुद्धहै॥१६॥
४१७ पत्र पर लिखाहै कि मन्दिरमें मकड़ी
के जाले होजावें तो साधु मन्दिर के नौकर द्वारा

उत्तरवादेवे नहीं तो यत्नसे आपही उतार देवे। तर्क॰ देखो यत्नका जोर, अरे! अविचार वादी! जब उतारही लिया तो फिर यत्न का हेका हुआ क्योंकि श्वेतरंगके मकड़ीके जाले में अनेक अण्डे होतेहैं वे किसको रोवेंगे, वेतो जाला उतारते समय तत्काल ही मरजायंगे फिर वह यत्न काहेकाहुआ यह विरुद्ध॥१७॥ ४१८ वें पत्र पर लिखाहै कि पूजातीन प्रकार कीहै सो (१) विघ्न दूर करणी ते अङ्ग पूजा, (२) पुण्य कारिणी ते अग्रपूजा, और (३) मोक्ष दायिनी ते भावपूजा, सोजिनाज्ञाका पालनहै॥उत्तर पक्षी की तर्क॰ जिनाज्ञा का पालन तो भाव पूजाकही तो फिर तुम्हारे इस कहने बमूजिब तो दो प्रकार की पूजामें जिनाज्ञा का पालन नहुआ अर्थात् अज्ञा से बाहर रही॥

बस हमारी भी यही श्रद्धाहैकि भाव पूजा ही जिना नाज्ञाका पालनहै और भाव पूजा ही मोक्ष दायिनी है॥

फिर तुम किस प्रकार कहतेहो कि अङ्ग पूजा और अग्र पूजा अर्थात् फूल फलसे मूर्त्तिका पूजन करनी जिनाज्ञा और मोक्ष दायिनी है सो तुम्हारा कहना परस्पर विरुद्ध है ॥१८॥ ४१२वें पत्र पर लिखाहै कि घर देहरे की पूर्व उत्तर ओर मुख करके पूजा करे और जो पश्चिम को मुख करके पूजे तो ४ चौथी पीढ़ीसे विच्छेद होय, दक्षिणको मुख करके पूजे तो संतान नहीं होय, और विदिशा में मुख करके पूजे तो धन पुत्र और कुलका नाश होय इत्यादि०॥ और पत्र ४७८ वें पर लिखाहै कि जो देहरे के पास रहे तो हानि होय और

पत्र ४७९ वें पर लिखाहै कि दृत्त की ध्वजाकी मन्दिर के शिखर की विचले दोपहर की छाया पडे वहां वसे तो हानि होय और फिर ऐसा लिखाहै कि जिनेश्वर की जिधर दृष्टिहोवे उधर वसे नहीं॥ तर्के॰ कस्मात् कारणात् अर्थात् क्यौंन वसे जो भगवान् की दृष्टिमें न वसे तो और इसे अच्छे स्थानमेंकहांवसे यह तो प्रकटही लोकोमें कथनहै कि सत्पुरुष तथा शाहूकार जिधर कृपादृष्टि (मेहरकी नज़र करे) उधरही पूर्ण (निहाल) कर देवे और जिधर दुर्दृष्टि (कहर की नज़र) करे उधर ही नाश करदेवे सो तुम्हारे लेखसे तो भगवान् सदैव (हरवक्त) तीव्रदृष्टि (क्रूर नज़र) रहते होंगे क्योंकि तुमने लिखा है कि भगवान की दृष्टिकीतर्फ़ न वसे॥

तर्क-अरे भाई! ऐसे लिखने वाले! यह क्या तुम्हारी समझमें फ़रक है कि जो ऐसे ऐसे भगवान के अपमान रूप कथन लिखते हो और ऐसे ही और नवीन ग्रन्थोंके कथनभी सिद्ध होगे जिनपे तुमने आचरण (अमल) कियाहै॥

नहीं तो बुद्धिमान को चाहिये कि यथार्थ भाव पर प्रतीति करे और यह ऐसे पूर्वक कथनतो प्रत्यक्ष उपहास रूप विरुद्धहैं॥१६॥

पत्र ४६७ वें पर लिखाहै कि कृष्ण वासुदेव नेमजी को पूछता भया कि हे भगवन्! कोनसा पर्व पर्वों में से उत्तमहै तब नेमजी कहते भये कि मार्गशिर सुदि ११ एकादशी पर्व उत्तमहै क्योंकि जिनेन्द्रों के ५ पांच कल्याण सर्व क्षेत्र आश्री १५० डेढ़सो हुयेहैं फिर कृष्णजी यह कथन सुनकर ताही

दिनसे मौनपोसा करते भये विचरने लगे
और ता दिनसे एकादशी व्रत प्रसिद्ध हुआ॥
खण्डन उत्तर पक्षी की तरफ से।यह ग्रन्थकार
का कथन झूठहै क्योंकि सूत्रमें तो भव
आश्री नियाना करने वाला अवृति कहाहै
अगर नहीं तो सूत्र का पाठ दिखाओ कि
कृष्णजी ने कोई पचक्खान धर्म निमित्त कि
याहो, अक योंही अनहुए मतग्राहियों के
गोले गरड़ाये हुए सूत्र शास्त्र विनाही लिख
धरतेहो सो कृष्णजीको धर्म निमित्त अर्थात्
महा पर्व एकादशी पोसा करना लिखाहै य
ह झूठ २०॥ पत्र २५०वे पर लिखाहै कि
१० दश प्रका मिश्र-वचन उत्तर पक्षी की
तर्फ से सो उनमें से दो वचन का अर्थ सू
त्र प्रज्ञापन्न थकी विरुद्ध लिखाहै उक्तंच
"अनंत मिस्सिए" इस शब्दका अर्थ पूर्वपक्षी

ने ऐसे लिखाहै कि अनन्त को प्रत्येक कहै तो मिश्र, प्रत्येक को अनन्त कहै तो मिश्र। तर्क। यह तो मिथ्या शब्द का अर्थहै और लिङ्गियेने मिश्र शब्दका अर्थ लिखाहै यह विरुद्ध॥२१॥ पत्र १११ वें पर लिखाहै कि "मूलोत्तर गुण दोष प्रति सेवी वकुश इत्यादि" उत्तर पक्षी सो यह झूठ, क्योंकि भगवती सूत्र सतक २५ उदेशा ६ द्वार ६ "वकुश नियंठा नो मूल गुण पड़िसेवय होज्जा उत्तर गुण पड़िसेवय होज्जा" इतिवचनात् पूर्व पक्षीका कहनाहै कि मूल गुण उत्तरगुणमें दोष लगाने वालेमें वकुश नियंठा पाईए और सूत्रमें मूल गुणमें दोष लगानें वाले में वकुश नियंठा न पाईए इति सूत्रथकी विरुद्ध २२॥ ऐसे २ अनेक परस्पर विरुद्ध और अनेक शास्त्रार्थ के विरुद्ध औरअने

क विल कुलही झूठ जैन तत्वादर्शग्रन्थमें लिखेहे सो हम कहांतक लिखें॥

येतो थोड़ेसे वन्नगी मात्र इस पुस्तकमें लिखेहें फिर और देखियेगा कि जैनतत्वा दर्शग्रन्थके लिखने की मिहनत का सार क्या निकलाहे जैसे कि पत्र २९४ वें पर लिखाहे कि किसी पूछकने प्रश्न किया कि परमात्मा के पूजन में क्या लाभ (नफा) हे इस प्रश्न का उत्तर ग्रन्थकर्त्ताने यह दियाहे कि पोथी पलंग पर रखतेहो और चौकी पर माथे पर रखतेहो और अच्छे वस्त्रमें वांधतेहो इस का क्या लाभ (नफा) हे १॥

उत्तर पक्षी की तर्क· देखो जिस परमात्मा के पूजने पर इतना डम्भ और पक्षपात उठाया है और पिछले आचार्यो का उपदेश और चाल चलन उलट पलट और की और तरह

कराहै सो उसी परमात्मा के पूजनमें जो न
फ़ा होताहै उस नफ़े का पाठ सूत्रमें से कोई
न मिला तो यह खिशानां सा महने रूप ज
वाव लिख धराहै, खैर तदापि हम तुम्हारे
जवाब को खण्डन करतेहैं कि पोथी को प
लंग ऑर चौंकी पर अपने पढ़नें के आराम
वास्ते रखतेहैं और मस्ये पर तो कोई मत प
दी रखना होगा और अच्छे कपड़े में तो अ
पने उपकरण की रक्षा वास्ते रखतेहैं परन्तु
पोथी की पूजा तो नहीं करतेहैं यथा "नमो ब्र
म्हलिपये" इति अस्यार्थः; नमस्कार हो ब्र
म्ह ज्ञानी की लिखित को भावार्थ सो इस पो
थी यानि स्याही कागज़ को तो नमस्कार नहीं
करतेहैं अपितु ब्रह्मज्ञानी के ब्रह्मज्ञान को
नमस्कारहै कि जिस ज्ञानसे लिखने पढ़ने
की बुद्धि प्रकट हुई तथा जिस ज्ञानीने अत

रों की मर्यादा अर्थात् लिखने की रीति प्रका
शकी उनको नमस्कारहै शास्त्र अनुयोग द्वार
तर्क-अगर तुम ऐसे कहोगे कि जो पोथी
को तुम नहीं पूजो तो फिर पैर लगाओ, तो
हम तुमको यह उत्तर देंगे कि किसी पुरुष
ने किसी पुरुष को कहा कि तुम किसी सामा
न्य पुरुष को पूजो तो फिर उसने कहा कि मैं
तो नहीं पूजता इसके पूजनेमें क्या नफाहै
तो पूर्व पक्षी बोला कि जो नहीं पूजो तो ठो
कर मारो उत्तर पक्षी बोला कि ठोकर मार
ने का क्या मकसदहै न मारिये न पूजियें सो
यह दृष्टान्त सहीहहै और तुम्हारा जवाब
पण्डिताई के राह पर तो है नहीं क्योंकि सू
त्रके पाठानु पाठ खोल धरनेथे कि पूजाका
यह नफ़ाहै पूजाका यह नफ़ाहै परन्तु हो
ते तो लिखते नहींतो कहांसे लिखें॥

और अपनी तर्क से तो सूत्रोंमें बहुते राही ढूंड रहेहै परन्तु कहीहोंतेतोपांतेहां अलवत्ता सूत्रमें से ढूंड ढांड के एकदशावै कालिक के ८वें अध्ययन की गाथा ५५ वीं ब्रम्हचारी के अर्थ मेंहै सो खोलधरतेहैं यथा "चित्तिभित्तं न निज्झाए, नारीवासुअलंकिअं, भक्खरंपि वदट्ठूणं, दिठ्ठंपडि समाहरे॥१॥ अस्यार्थः साधु ब्रह्मचारी पुरुष चि० चित्रामकीभीत देखे नहीं ना० वा अथवा स्त्री अलङ्कार अर्थात् भूषण (गहने) सहित अलङ्कृत को देखे नहीं कदाचित् नज़रमें आपड़े तो दि० दृष्टिको पीछे मोड़े भ० (जैसे) सूर्य पर दृष्टि जापड़े तो जलदी पीछे मुड़जाय इत्यर्थः भला मूर्त्ति पूजनी सहीह किस तरह इस गाथामें होगई, खैर बड़ी बड़ाई कहतेहो कि स्त्रीकी मूर्त्ति देखने से काम

जागताहै और भगवान की मूर्त्ति देखने से वैरागयजागताहै सोई काम जागनेका और वैरागयजागने का वास्तव तत्व समझक र देखो तो बड़ा फर्क दिखाईदेगा सो अगले प्रश्न के जवाब में लिखेंगे॥

फिर पत्र २९४वें पर लिखाहै कि किसीने प्रश्न किया कि भगवानके नाम लेने से प्रणाम शुद्ध होजानेहैं तो फिर परमात्मा के देखने में क्या नफ़ाहै तो इस प्रश्न का जवाब ग्रन्थ कर्त्ताने यह दियाहै कि"नाम लेनेसे मूर्त्ति देखनेमें अधिक ज्यादा) नफाहै जैसे कि यौवनवती (जुवान) स्त्री प्रीतिसुन्दरी शृङ्गार सहित होतोउसके नाम लेनेसे तो थोड़ा कामजागताहै और प्रत्यक्ष स्त्रीके तथा स्त्रीकी मूर्त्तिके दे खने से बहुत काम जागताहै"

उत्तर पक्षीकी तर्क० हे विचारवानो! अब देखना चाहिये कि इस जवाब के देनेवाले को और कोई शुद्ध जवाब नहीं मिला जो विराग भाव अर्थात् वैराग्य का हेतु सराग भाव पर उतारा है सो बिलकुल अशुद्ध है क्योंकि वैराग्य तो क्षयोपशम भाव है तथा निज गुण अर्थात् आत्मगुण है

और कामका जागना उदय भाव है तथा परगुण अर्थात् कर्म योग्य है सो क्षयोपशम भाव और उदय भावका तो परस्पर रात दिन का अन्तर है॥

यथा, दृष्टान्त है कि जो गृहस्थी लोक हैं वे अपने पुत्र, पुत्रियों को लिखना पढ़ना आदिक कार व्यवहार तथा लज्जाका करना और मीठा बोलना तथा क्षमाका करना और माता पिता आदिक की आज्ञाका प्रमाण

करना इत्यादि शिक्षा और विद्या बडी रुचि इनतसे सिखातेहैं और इनको बहुत अ भ्यास करने से विद्या आतीहै क्योंकि कर्मों का क्षयोपशम होवे तो विद्या आवे नहोतो नहीं आवे और फिर देखियेगा कि एकदो दिनके बच्चोंको स्तनका दबाना अर्थात् दू धका चूंगाना, कौन सिखाताहै और फिर रोना हसना रूठना और करना कुछ और बताना कुछ इत्यादि अनेक उपाधियें कौन सिखाताहै और फिर यौवनमें कामनीसे त था पतिके सङ्ग काम क्रीडा करनी तथा कटाक्ष युक्त नेत्रनो से देखना और मन्द मन्द हास पूर्वक मुस्काना इत्यादि सब कर्म किसके माई बाप सिखातेहैं यह प्र वृत्तितो स्वतःही आजातीहै क्योंकि यह उ दय भावहै इस कारण इन दोनो पूर्वोक्त

भावों का एकसा हेतु कहने वाला विरुद्ध वा
चीहै परन्तु यह भाव तो निष्पक्ष दृष्टिसे स
म होगा और पक्षके नशेमें बड़ बड़ार कर
ने के लिये तो राह अनेक हैं॥
अब हम एक प्रश्न करतेहैं कि जब तक
गुरुका उपदेश और शास्त्र ज्ञान नहीं हो
गा तब तक मूर्त्तिके देखने से ज्ञान और
वैराग्य कैसे होगा और ज्ञानके हुए पीछे
मूर्त्ति से क्या प्रयोजन रहताहै॥यथा दृष्टान्त
किसी ग्रामके रहने वाले दो पुरुष किसी
प्रयोजन के लिये एक नगर में आये उन्हों
ने उस नगर के निकट सुना कि मनुष्य
को धर्मका जानना और ग्रहण करना उ
चित है इसके अनन्तर वे दोनों पुरुष न
गरमें जाकर अन्य २ पुरुषों को पूछते भ
ये कि हे भाइयो! धर्म कहां मिलताहै जो

मनुष्य को अङ्गीकार करना उचितहै तब
एक पुरुष को एक नागर पुरुष बोला
कि धर्मशालामें जाओ वहां सज्जन शा
स्त्रार्थ धर्मोपदेश करतेहैं॥
और दूसरे पुरुष को एक और नागर पुरुष
बोला कि ठाकुर द्वारे चले जाओ, वहां ठाकुर
जीको मत्थाटेककर धर्म प्राप्तहोगा। यह सु
नकर एकतो धर्म शालामें चलागया और
वहां शास्त्र श्रवण करके जाना कि श्रीकृष्ण
ठाकुरजी श्यामवर्ण ज़एहैं और १०८ एक
सौ आठ लक्षण संयुक्त देह महा बल धारी
ज़एहैं और न्याय नीति रजोगुण तमोगुण
सतोगुण धारी ज़एहैं और बडे दयावान् स
न्त सहायक ज़एहैं और उन्होंने दया, दान,
सत्य, इत्यादि धर्म बतायाहै और उनकी अ
र्द्धाङ्गना श्रीराधिकाजी बडी लज्जावती सुशी

ला पतिभक्ता गौरवर्ण ऊई है इत्यादि·
और दूसरा ठाकुर द्वारे पहुंचा तो वहां देख
ता क्या है कि एक श्याम वर्ण पुरुष और गौर
वर्ण स्त्री, की मूर्त्ति का, जोड़ा खड़ा है सो उसको
देखकर उस पुरुषने हंसकर मनमें कहा
कि आहा! क्या अच्छी स्त्री-पुरुषकी जोड़ी सजी
है और क्या २ अच्छे ज़ेवर हैं वस और कुछ
ज्ञान वैराग्य नहीं पाया फिर वापस बाजार
में आया और वह दूसरा पुरुष धर्म शाला
मेंसे धर्मोपदेश सुनकर बाज़ारमें आया,
और दोनो आपसमें पूछनें लगे कि कुछ ध
र्म पाया? धर्मशाला वाला बोला कि हां पाया,
श्री ठाकुरजी बड़े न्यायी ऊए हैं और दया दान
कर्नो, धर्म है। भला तुमने क्या पाया? तो व
ह ठाकुर द्वारे वाला बोला कि मैंने तो कुछ
नहीं पाया, हां अलबत्ता एक बड़ा सुन्दर

गुड़ियों का जोड़ा देखआयाहूं चल तूभी मेरे साथ चलकर देखले तव वह बोला कि मैं देखके क्या करूंगा, जो कुछ पानाथा सोमैं गुरु कृपासे पाआयाहूं अव मूर्त्ति से क्या पा ऊंगा जो कुछ तुमने पाया।इत्यर्थः

और इसी अर्थमें दूसरा दृष्टान्त लिखते हैं कि एक नगर में एक वड़ा नामी हकीम था वह कालान्तर से काल कर गया और उस हकीम के दो वेटेथे परन्तु वे हकीमी नहीं जानतेथे लेकिन एकने अपने वाप की मूर्त्ति बनवाली और दूसरेने वापकी हकी मी की पुस्तक सांभ रक्खी फिर एकदा सम य हकीम की वड़ाई सुनकर कोई रोगी हकीम के द्वारे आया और सुना कि हकीम तो गुज़र गया परन्तु हकीमके दो वेटे हैं उनसे अर्ज़ करो जो कदाचित् तुम्हारा रोग

हटादेवें। तब वह रोगी पहिले, छोटे वे
टे के पास गया और कहने लगा कि तुम ह
कीमके पुत्रहो और मैं दूरसे आयाहूं इस
लिये मेरा रोग कृपाकर हटादो। तब वह
बोला कि हकीमजी की मूर्त्तिसे मुराद पा
ओ तब वह रोगी हकीम की मूर्त्तिके आगे
बैठके रोने लगा और कहने लगा कि हे ह
कीमजी! मेरी बगलमें पीड़ा होतीहै मेरे क
लेजे में पीड़ा होतीहै और मुझे तापभी च
ढ़ जाताहै+ सो कुछ दवा बताओ कि जिस
से मैं राजी होजाऊं इत्यादि. परन्तु उधरसे
कुछ आवाज तलब न आई तब हारके
चला आया और फिर बड़े बेटे के पासजाके
अर्ज़ करी कि तुम मेरा रोग हटाओ, तब
वह बोला कि हकीमजी तो गुज़र गयेहैं
परन्तु हकीमजी की पोथी मेरेपासहै सो देख

कर वतादेताह फिर पोथीमेसे देखकर वता
या कि इस कारणसे रोग होताहै और
इस औषधि से रोग जाताहै फिर उस रोगी
ने वैसेही परहेज से औषधि खाकर अप
ना रोग गमादिया। इत्यर्थः॥ शास्त्र द्वारा
ही ज्ञान वैराग्य होताहै मूर्त्ति का आर
म्भ तो योंही लोभ तथा मत पक्षके व
श उठातेहैं क्योंकि उत्तराध्यन अध्ययन
१० वां गाथा ३१ वी में ऐसा भावहै कि भ
गवान महावीर स्वामी कहते भये कि
"आगमें काले" अर्थात् पांचमें आरे में
आर्य पुरुष जैनी भव्यलोक यों कहेंगे
कि नहीं निश्चय आज दिन जिनेश्वर दे
व दीखे परन्तु घणा दीखेहै जिनेश्वर देव
का उपदेश मार्ग, तथा मार्गके वताने
वाले अर्थात् साधु।सो सूत्र यहहै "नह

जिने अज्ज दीसई वहु मरु दीसई मगा दे शिर" इति वचनात्

परन्तु यहां असे नहीं कहा कि आज जिन नहीं दीखे परन्तु जिन पड़िमा जिन सारखी घनी दीखेहे, इत्यादि०

नजाने पूर्वपक्षीने कौनसे नये बनावटी ग्रन्थ वमूजिव, तथा स्वकपोल कल्पित जैन तत्वादर्श ग्रन्थ पत्र ५६६वें पर लिखाहे कि "सिद्ध सेन दिवाकर साधुने राजा विक्रमके द्वारे सवाल किया कि ओंकार नगरमें चतुर्द्वार जैन मन्दिर शिव मन्दिर से ऊंचा वनवाओ और प्रतिष्ठाभी कराओ, तव राजाने वैसेही करा, फिर और पत्र ५६८ वें पर लिखाहे कि श्री वज्रस्वामी आचार्यने वोद्धोंके राजमें श्रीजिनेन्द्र की पूजावास्ते फूल लाके दिये, वोद्ध राजाको

जैनमतीकरा तर्क• देखो साधु हाथोंसे फल लाये
परन्तु सनातन सूत्रोंमें तो ऐसा भाव क
हीं नहींहै जैसे कि गोत्तमजी सुधर्मस्वा
मी जम्बूस्वामी आदि आचार्योंने किसी
पहाड़ वा मन्दिर तथा मूर्त्तिका उद्धार
कराया तथा प्रतिष्ठा वा पूजा करी करा
ई अथवा किसी श्रावकने पहाड़ की
यात्रा करी तथा मन्दिर वा मूर्त्ति आदि व
नवायेहों इत्यादि अपितु
शास्त्रमें तो ऐसा भावहै कि बुद्धिमान सा
धु जहां २ ग्राम नगर में जाय तहां २ द
या का उपदेश करे। यथा उत्तराध्ययन
अध्ययन १० वें गाथा ३६ वी में बुद्धे परि
निवुडे चरे गाम गए नगरेव सञ्जए, सं
ति मग्गंच वूहए, समयं गोयम मा प
मायए॥ १॥ अर्थ बु० तत्वको जान शीत

ल स्वभाव से विचरे संयमके विषे तेस
याति साधु गा० ग्राम में गये थके तैसेही
नगर में गयेहुए अर्थात् ग्राम में जाय त
था नगर में जाय तहां सं० दया मार्ग
अर्थात् ६ षट् काय रक्षा रूप धर्म(च)
पदपूरणार्थहै वू० करे अर्थात् दया प्रक
ट करे। श्रीमहावीर स्वामी कहते भये कि
हे गोतमजी दया मार्ग के उपदेशदेनेमें स०
समय मात्र अर्थात् अल्प काल मात्र भी
प्रमाद अर्थात् आलस्य न करना इत्यर्थः

परन्तु महावीर स्वामीजीने ऐसेतो
नहीं कहा कि हेगोतम! साधु जिस२ ग्राम
नगर में जाय उस२ में मन्दिर बनवा
देवे छेरों, ढोलकी बजवा देवे पुराने दे
हरों को तोड़ करनये बनवादेवे इत्यादि
हां अलबत्ता नये ग्रन्थ जिनमें ग्रन्थरच

यिता आचार्य का नाम ओर(साल)सम्वत्
का नाम होगा सो उनमें ऐसा पूर्वक स
माचार लिखाहोगा परन्तु एक वड़ी भूल
की वातहे कि मूर्तिको भगवान कहना
यथा "जिन पड़िमा जिन सारखी" फिर दम
ड़ी २ मोल करना वड़ीअशातनाहे जैसे कि
एक अना पूर्वी नाम छोटीसी पोथी होती
हे ओर उसका ≈॥ आध आना मोल पड़ता
हे ओर उसमें ११ ग्यारह मूर्तियें छपातेहैं
अव सोचना चाहिये कि एक २ मूर्तिका
कितना कितना मोल पड़ाऽहा!!! अपसोस
है कि वेभगवान, त्रिलोकनाथ सार अमो
ल पदार्थहैं कि जिनका नाम रखकर मू
र्तिका एक २ कौड़ी मोल किया जाताहे।
तर्क· भला जो कदाचित् तुम ऐसे कहो
गे कि सूत्रभी तो मोल विकतेहैं तोहम

उत्तर देंगे कि सूत्र को हम भगवान् तो नहीं
मानतेहैं कि यह ऋषभदेवजीहैं यह महावी
रजीहैं अपितु सूत्र तो हमारी विद्या के या
ददाश्ती के उपकरणहैं जैसे वही को देख
कर लेना, देना याद करलेतेहैं परन्तु वही
को लोक भगवान तो नहीं मानते
वस इस दृष्टान्त वत्जीव सद्गुरु की सेवा
करके ज्ञान पैदाकरो और जप, तप, दया,
दान, संतोष और शील, में पुरुषार्थ करो
किजिससे मुक्तिहोवे और मूर्ति को भगवान
कहना तो ठीक नहीं क्योंकि
इससें ऐसे प्रश्न पैदा होते हैं कि
१ प्र० देव समदृष्टि वा मिथ्यादृष्टिहै ?
उत्तर० देव समदृष्टि
और मूर्ति जो सुवित पाषाण की होवे तो
मिथ्यादृष्टि नहींतो जड़तो हैहीइसी तरह

सब जगह प्रश्न(सवाल)के उत्तर(जवाब) में कहना॥

२प्र॰ देव,त्यागी किम्वा भोगी?
उ॰ देव त्यागी, मूर्ति भोगी॥

३प्र॰ देव संयति किम्वा असंयति?
उ॰ देव संयति, मूर्ति असंयति॥

४प्र॰ देव संवरी किम्वा असंवरी?
उ॰ देव संवरी, मूर्ति असंवरी॥

५प्र॰ देव वृत्ति किम्वा अवृत्ति?
उ॰ देव वृत्ति, मूर्ति अवृत्ति॥

६प्र॰ देव त्रस्य किम्वा स्थावर?
उ॰ देव त्रस्य मूर्ति स्थावर॥

७प्र॰ देव पञ्चेन्द्रिय किम्वा एकेन्द्रिय?
उ॰ देव पञ्चेन्द्रिय, मूर्ति एकेन्द्रिय॥

८प्र॰ देव, मनुष्य किम्वा तिरश्चीन?
उ॰ देव मनुष्य, मूर्ति तिरश्चीन॥

९ प्र० देव सन्नी, किम्वा असन्नी?
उ० देव सन्नी, मूर्त्ति असन्नी॥
१० प्र० देव दश प्राणधारी किम्वा चारप्राण०?
उ० देव दश प्राणधारी, मूर्त्ति चारप्राण०
११ प्र० देव षट् प्रजा धारी किम्वा चारप्रजा०?
उ० देव षट् प्रजा धारी मूर्त्ति चार प्राजा०
१२ प्र० देव तीन वेदमाहि सुवेदी किम्वा अवेदी?
उ० देव अवेदी, मूर्त्ति नपुंसक वेदी०
१३ प्र० देव यति किम्वा गृहस्थी?
उ० देव यति, मूर्त्ति गृहस्थी॥
१४ प्र० देव सुने किम्वा न सुने?
उ० देव सुने, मूर्त्ति न सुने॥
१५ प्र० देव देखे किम्वा न देखे?
उ० देव देखे, मूर्त्ति न देखे॥
१६ प्र० देव सुगन्धि जाने किम्वा नजाने?
उ० देव सुगन्धि जाने, मूर्त्ति नजाने॥

१७प्र॰ देव चले किम्वा न चले ?
उ॰ देव चले, मूर्ति न चले॥
१८प्र॰ देव कवला हारी किम्वा रोमाहारी ?
उ॰ देव कवला हारी, मूर्ति रोमाहारी॥
१९प्र॰ देव अकषायी किम्वा सकषायी ?
उ॰ देव अकषायी, मूर्ति सकषायी॥
२०प्र॰ देव सुक्ल लेशी, किम्वा कृष्ण लेशी ?
उ॰ देव सुक्ल लेशी, मूर्ति कृष्ण लेशी॥
२१प्र॰ देव तेरवें चौदवें गुणठाणे किम्वा प्रथमगु॰ ?
उ॰ देव तेरवें चौदवें गुणठाणे, मूर्ति प्रथमगु॰
२२प्र॰ देव केवली किम्वा छद्मस्थ ?
उ॰ देव केवली, मूर्ति छदमस्थ॥
२३प्र॰ देव उपदेश देवे किम्वा न देवे ?
उ॰ देव उपदेश देवे, मूर्ति न देवे॥
२४प्र॰ देव तीसरे चौथे आरे किम्वा पांचवें आरे ?
उ॰ देव तीसरे चौथे आरे मूर्ति पांचवें आरे घनी॥

२५ प्र० देव जघन कितने उत्कृष्ट कितने ?
उ० देव जघन २० वीस, उत्कृष्ट १७० एकसौ सत्तर - और मूर्त्तियें लाखें हैं घर २ में भरी हैं॥
इत्यादि फिर "जिन पड़िमा जिन सारखी" यह किस न्यायसे कहते हो ? खैर उनकी श्रद्धा के अधीन है मूर्त्तिके मण्डन करने को भी अनेक राह हैं और खण्डन करने को भी अनेक राह हैं परन्तु असल में तो यों है कि मूर्त्ति का मण्डन भी हठ है और खण्डन भी हठ है, तत्व केवली जानते हैं॥
और यह मतान्तरों की लड़ाई तो वीतराग देव केवल ज्ञानी मालकों के बैठे न निवड़ी जमालीवत्॥ और अब तो रांडों की फ़ौज है सो मतान्तरों की लड़ाई क्या निवड़ेगी परन्तु तदपि बुद्धिमानों को चाहिये कि स्वआत्म हितकार रूप धर्म में पुरुषार्थ करें क्योंकि तीर्थ

ङ्कर देवदयालु पुरुषों का निरवद्य मार्गहै य
था सूत्र सूयगडाङ्ग प्रथम श्रुतस्कन्ध अध्यन
११ वां गाथा १० तथा ११ वी॥ एयंखु नाणीणो सारं,
जंन हिंसइ किंचणं अहिंसा समयं चेव, एता
वतं वियाणीया॥१॥ उड्ढ अहेयं तिरियंच, जेके
इ तसथावरा, सवत्थ विरतिं कुज्जा, संतिनिवा
णमाहियं॥२॥ भावार्थ- इस निश्चय ज्ञानने सा
र जो नहणे जीव नाश ए किञ्चित् दयाही सिद्धा
न्त का सारहै एतलो जाण १ ऊंचे नीचे तिरछे लो
क में जेता त्रस्स्थावर जीवहैं सबकी हिंसाका त्याग
करे दयानिर्वाण कही २ तस्मात् कारणात् निर
वद्य मार्ग अर्थात् दया मार्गही प्रधानहै॥
और फिर देखना चाहिये कि जैन तत्वादर्श ग्र
न्थ रचाने वालेने पण्डिताई में तो कसर रक्खी
नहीं परन्तु झूठे गपोड़े भी बहुत लिखधरे हैं
जैसे कि पत्र ५७७ वे पर लिखाहै कि "विक्रम

संवत् १३४० के लगभग में पृथ्वीधर राजाके
वेटे जांजण नें उज्जयन्त गिरि के ऊपर १२
योजन ऊंची सोने रूपेकी ध्वजा चाढ़ी। तर्क०
भला सोचना चाहिये कि ४८ अठतालीस को
स ऊंची ध्वजा कैसे किसके सहारे खड़ी करी
होगी क्योंकि आध कोस ऊंची ध्वजा खड़ी नहीं
कोई करसकता तो फिर ४८ कोसकी ध्वजा
कहनी विना विचारे गोलेही गड़ावनेहैं और
मत पक्षियोंने प्यारी स्त्रीके कहने की तरह
हांजीही कह छोड़नाहै परन्तु बुद्धिमान ऐसे
२ उल्कापातों को कैसे मानें, नहींतो वताओ
कि कौन पुरुष देखआयाहै कि ४८ कोस की
ध्वजाहैक्योंकि अनुमान ६०० वर्षकी वात वता
तेहो सो इतनी जलदी कहीं उड़तो गई नहीं
होगी क्योंकि तुम २४०० चौवीससौ वर्षके व
नेहुए मन्दिर अवतक खड़े वतातेहो तोफिर

यह तो चौथे हिस्से के वर्षों की वातहै, और जो तुम हमारे कहेपे लज्जा पाके ऐसी वात व ना लोगे कि कोई देवता लेगया होगा तो हम यों कहेंगे कि देवते का क्यादिवाला निकलग या जो ध्वजाको लेगया। भला खैर लेहीगयाहो गा तो हमको वह ग्रन्थ दिखाओ कि कौनसे सालमे और कौनसी तिथि, नक्षत्र, में लेगया अपितु नही. यह तो विलकुल उपहास योग्य झूठहै जैसे किसी वालकने लाडमें आकर कहा कि मेरा विटोडा मेरुसमानहै॥

और जो इस वचनसे किसी पुरुष को क्रोध उत्पन्न होता हो तो उस पुरुष को हम क्षमा वेहैं और ऐसे कहेंगे कि हेभाई। शान्तिभा व करके जैनतत्वादर्श ग्रन्थको सूत्र द्वारा मि लाकर देखलो कि जो हम ऊपर विरोधोंका स्वरूप लिख आयेहै सो यह परस्पर विरोध

ठीक दिखायाहै वा नहीं॥

सो जेकर पण्डित पुरुष के लिख नेमें एक झूठभी लिखाजाय तो सभाके बीचमें पण्डिताई किधरही को घुसड़ जातीहै जैसे कि

आर्य दयानन्द सरस्वती की रचाईहुई सत्यार्थ प्रकाश नाम पोथीमें जैनके बारेमें कईएक झूठी बातें लिखीथी तो फिर उसको एक जैनी पुरुष ठाकुर दासने बहुत तंग कियाथा तो वह अपने असत्य लेखको मानगयाथा, सो इसलिये पण्डित पुरुष को ग्रन्थ में झूठ लिखना न चाहिये और जो आत्माराम संवेगी इनदिनोंमें गुजरातियों का शाहूकारा देखकर मुखपत्ती उतारके गुजरात देशमें पड़ा फिरताहै सोउसने जैन तत्वादर्श ग्रन्थमें अनेकही झूठ लिखधरेहैं यदि(जेकर) तुम न मानो तो भ

ला हमारे पूर्वक दर्शाये हुए विरोधों में से दो तीन विरोधों का तो सूत्रद्वाराजवा बोदेवो ॥

जैसे कि जैन तत्वादर्श ग्रन्थके पत्र ३१ वें पर१९वे अवतार मल्लिनाथजी का जन्म कल्याण,मथुरा नगरी में लिखाहै और एक दिन रात छद्मस्थ रहे लिखे हैं॥

और २२वें अवतार नेमिनाथजी का दीक्षा कल्याण सौरीपुरमें लिखाहै॥

और पत्र ४६७वें पर लिखाहै कि कृष्ण वासुदेव ने महापर्व ११ शी पोषध पोसा करें सो दिखलाओ कि कौन से सूत्रके न्याय से तुमने लिखाहै॥

और साबित करो कि कौन से सूत्रमें तुम्हारा पूर्वक कथन लिखाहुआ है॥

और जो नहीं है तो तुम ऐसे कहो कि

हमने झूठ लिखाहै अथवा कहो कि हम भूलगये॥
उत्तरपक्षी· जो भूलगये तो फिर छापेका खोट दूर कराओ क्योंकि तुम्हारे रागी, तुम्हारे पूर्वक कथन को सत्यमान बैठेंगे॥नहीं तो सूत्रको झूठकहो॥ और हमजो पीछे ऐसा लिखआयेहैं कि आत्माराम संवेगी गुजरात देशमें पड़ाफिरताहै सो आप इसबातपे गुस्सा न करें क्योंकि तुमने जैनतत्वादर्शग्रन्थके पत्रे ५९२वेंपर लिखाहै कि वसन्तराय और रामबखश ढूंडिया पञ्जाबमें पड़ा फिरताहै सो तुम्हारे कहने पर तुमको बराबर का जवाब दियाहै नहीं तो कुछ ज़रूरत नथी॥
उत्तरपक्षी· इस ग्रन्थकर्तासे हम एक और बात पूछतेहैं कि जो आपने जैनतत्वादर्श ग्रन्थ रचाहै उसमें जो शास्त्रोंके बमूजिब

नो, तत्त्व आदिका स्वरूप लिखाहै सो यथार्थ औ
र सत्यहै क्योंकि सनातन अर्थात् प्राचीन शा
स्त्रों में सुनते, पढ़तेही आतेहैं यह कुछ न
यी वात नहींहै और इसीलिये उसमें कोई
उज्र करनें कोभी समर्थ नहींहै और जो आ
पके इस ग्रन्थ रचानेके अभिप्राय वम्जिव
जो थोड़े कालके रचेहुए ग्रन्थानुसार तथा अ
पने अभिप्राय वम्जिव जो नये कथनहैं उ
नमें तो कुछ विशेष त्याग, वैराग्य तो प्रकट
होता नहीं हा, ऐसा तात्पर्य प्रकट होताहै
कि हरएक मतकी निन्दा आदिक तथा जैन
मत जो शान्ति दान्ति निरारम्भरूपहै तिसके
विषय में आपने यह पुष्टि वज़न रक्खीहै
कि मन्दिर नामसे मकान आदि वनवाना औ
र अवतारों की नकल रूप मूर्त्ति रखनी औ
र वीतराग देवकी मूर्त्ति को सरागी देवकी

मूर्त्ति की तरह फल फूल आदि सामग्री से पू
जना और नाचना गाना वजाना इत्यादि क
थन मुख्य रक्खेहैं सो हम यहां तर्क करतेहैं

कि ऐसी पूजातो सरागी देवों की है
यथा सीतारामजीकी मूर्त्ति की तथा राधाकृ
ष्ण जीकी मूर्त्ति की तथा शिवशक्ति की मूर्त्ति
आदिकी सोयेसरागी देवहैं क्योंकि इनकी काम
भोगादि सामग्री स्त्री आदिक प्रत्यक्ष संयुक्त
है सो इनकीतो फूल, फल, राग, रंग, होम,
भोग, नाच, नृत्य रूप भक्ति अर्थात् पूजा, संभ
वहै यानि मुनासिबहै सो उन्होंके शास्त्रानु
सार और उन्हीके मत वमूजिव योग्यहै क्यों
कि उनके शास्त्रोंमेंसे उनके देवोंका स्वरूप
सराग, सकाम, सक्रोध, प्रकट होताहै जैसे
कि गोपी वल्लभ, शङ्ख चक्र गदा धारी, धनुर्धा
री, राक्षस रिपु मर्दन इत्यादि ॥

और जैनमें जो देव, ऋषभदेव आदि श्री पार्श्वनाथजी, श्री महावीरस्वामीजी, सो इनका स्वरूप जैन शास्त्रोंमें परम विरक्त, परम वैराग्य और कनककामिनी प्रसङ्ग वर्जित और सुचित पदार्थ अभोगी इत्यादि भाव प्रकट होताहै ॥

फिर तुमने ऐसे निरागी देवोंकी पूर्वक सरागी देवोंकी तरह फल, फूल, नाच, नृत्य, रूप, पूजा, कौन से न्यायसे प्रमाण करीहै सो हमको भी बताओ ॥

और जो तुम ऐसे कहोगे कि हम चारों अवस्थाओं को मानतेहैं तो फिर हम उत्तर देंगे कि जो बाल अवस्थाको पूजो तो मूर्त्ति को झुग्गा टोपी चक्की लडू छणकणा इत्यादि देने चाहिये ॥

और जो राज अवस्था को पूजो तो मूर्त्ति को

हो यह नाम निक्षेपा॥ (२) जो काष्ठ तृण पाषाण कौड़ी आदि वस्तुको थाप लेना कि यह मेरा अमुक पदार्थ है सो स्थापना निक्षेपा॥ (३) जो गुण रूप कार्य होनेका उपादानादि कारण होय सो द्रव्य निक्षेपा॥ (४) जो गुण दायक लाभदायक कार्य रूप होय सो भाव निक्षेपा कहलाता है इति॥ अब दृष्टान्त सहित खुलासा लिखते हैं। यथा (१) एक पुरुष का नाम राजा है उसमें राजाका नाम निक्षेपा पाईए परन्तु वह राजा नहीं क्यों कि उसपै मुकद्दमा लेके कोई भी आता नहीं (२) दूसरे काठ पाषाण वा चित्राम का राजा थापलिया जावे जैसे कि यह रणजीतसिंह राजा है तथा राजे की मूर्त्ति है सो उसमें राजा का स्थापना निक्षेपा पाइए॥

परन्तु वहभी राजा नहीं क्योंकि उसपेभी मुकद्दमा आदि राज कार्य की सिद्धि के लिये कोई नहीं आता॥ (३) तृतीय, राजा का पुत्र है परन्तु राजगद्दी नहीं मिली है सो उसमें राजा का द्रव्य निक्षेपा पाइए तथा और किसी सामान्य पुरुष को राज देने को मुकर्र किया गया है उसमे भी राजा का द्रव्य निक्षेपा पाइए क्योंकि वह राजा होने का उपादान कारण है परन्तु वहभी राजा नही क्योंकि उसपे भी मुकद्दमा तै नहींहोता है॥ (४) चतुर्थ-जो खास राजा गद्दी धरेहै उसमें राजा का भाव निक्षेपा पाइए सो वह राजा प्रमाण है क्योंकि सबके मुकद्दमें तै कर सकता है॥ इत्यर्थः॥

परन्तु जैसे तुम जैन तत्त्वादर्श में लिख चुके हो कि "जो तुम स्थापना नहीं

मानते हो तो भगवान का नाम क्यों लेते हो नाम लेने से क्या होगा यहभी तो नाम निक्षेपाहीहै ॥

तो हम उत्तर देंगे कि वाहजी वाह !! तुमनेद्वेष से पीड़ित होकर नाम निक्षेपा और नाम लेनेका भेदभी नहीं जाना क्योंकि नाम लेना तो भाव गुणों का स्मरणहै जैसे कि राजावड़ा दयालु (कृपालु) है और बड़ा न्याय कारीहै इत्यादि। यह गुणों की भावरूप स्तुति का करनाहै किम्वा नाम निक्षेपाहै? अपितु भाव गुणहै नाम निक्षेपा नहीं, नाम निक्षेपा तो वह होताहै कि जो पूर्वक उचित अनुचित वस्तु का नाम रक्खा जाय इतिहेम·

और जो तुम ऐसे कहोगे कि नाचना, कूदना, गाना, वजाना, और साधु को ढोल ढमके से शहर में प्रवेश कराना यह जैनधर्म

की प्रभावनाहै॥ उत्तरपक्षी·
किस न्यायसे ?
पूर्वपक्षी· जैसे कि महावीरस्वामीजी के आगे
२ फूलो के बिछोने बिछेथे और देव दुन्दुभी
बजाकरेथी॥
उत्तरपक्षी· वेतो तीर्थङ्कर देवथे इसलिये
उनकी अतिशायित (अत्यन्त) महि
मा प्रकाशित होरही थी और तुम सामा
न्य साधुकी वैसी अतिशाय रूप महिमा किस
न्याय से करतेहो ?
पूर्वपक्षी· तबतो तीर्थङ्कर देवथे परन्तु अब
पञ्चम कालमें तीर्थङ्कर देव तोहै नहीं तोफिर
सामान्य साधुकी ही महिमा करके जिन मार्ग
को दिपावेहै॥
उत्तरपक्षी· अरे! भाई! यह तेरा कहना कैसे
प्रमाण हो क्योंकि श्री ५ सुधर्मस्वामीजी, श्री

श्री ५ महावीर स्वामीजी के पाट धारी जोथे, सो उनके तो आगमन में अतिशय रूप म हिमा किसी देवने तथा श्रावकोंने करी ही नहींथी क्योंकि सूत्रों में ठाम २ ऐसा पाठहै कि सुधर्म स्वामी जी अमुक नगर में अमुक बागमें "पंचसै समणा सद्धिं संपरिवु डे" अर्थात् पधारे अहापडिरूवं उग्गहं गि ण्हइ नव संयमेणं अप्पाणं भावे माणे विह रई परिसा निग्गया धम्म कहियो परिषा प ड़िगया" इत्यादि परन्तु ऐसाभाव कहीं न हीं है कि श्रावकोंने बाजे गाजे से लाकर बा ग आदिक में उतारे, तस्मात् कारणात् तुम्हारा गाजे बाजे से नगर में आना और श्रावकोंको लाना, अयुक्तहै क्योंकि जब ऐसे महात्मा पु रुष जो साक्षात् जिननहीं पर जिन के समा नथे उनके आगमनमें तो गाजे बाजे से

नगार प्रवेश कराने का पाठहै ही नही, और
जो हैतो सूत्रका पाठ हमको भी दिखाओ
और जो सूत्रमें नहींहै तो फिर तुम किस
न्याय से ऐसी अशातना करते हो जो भग
वान की हिरस करके भगवान के तुल्य
अतिशय रूप महिमा को चाहते हुए ढो
ल ढमाके से वाजार में को आतेहो और
फिर कहतेहो कि जिन धर्म की प्रभावना
हुई० तर्क० जो जिन धर्म की प्रभावना इ
स तरह होती तो सुधर्म स्वामीजी आदिकोंने
वाजे गाजे के आडम्बर कोनंही किये? अपि
तु कहां तो साधु का परम शान्तिरूप, निस्पृ
ह मार्ग और कहां तुमरा एक डोला, पुस्त
क, जलघड़ा तथा सहस्र ध्वज नाम झंडा
लेकर वाजार में ढोल ढमाके से घूमना,
और इसको जैनकी प्रभावना कहना?

उत्तर पक्षी ॥

यह जैनकी प्रभावना नहींहै क्योंकि नाचना, कूदना ढोल ढमाका तो जोकोई ऊंच नीच पुरुष दाम खर्चेगा सो वही करलेगा और जैनी कोई स्वर्गों का वाजातो लेही नहीं आतेहैं जो दुनियां को आश्चर्य हो कि देखो जैन धर्म वड़ा अद्भुतहै जो स्वर्गों से वाजे उतरतेहैं सो जो ऐसे होय तो भला धर्म की महिमा अर्थात् प्रभावना होय परन्तु ऐसे तो है नहीं येतो वेही चर्मके वाजेहैं और वेही चाण्डाल (चूढ़े) वजाने वालेहैं जो हर एक गृहस्थी के व्याह शादियों में व जाया करतेहैं सो कहो ऐसे २ डम्भ से धर्म की प्रभावना क्या हुई२ धर्म की प्रभावनातो त्याग, वैराग्य, ब्रम्हचर्य, सत्य, और संतोष, के करने से और दया दान के देनेसेहोतीहै

और ये एवं पतियों के एवंक चलन तो स्व
च्छन्दहैं क्योंकि इनका भेषभी जैनके सना
तन भेष से अमिलित (भिन्न) है जैसे कि
सूत्र प्रश्न व्याकरण अध्ययन ८वें तथा
१०वें में साधुका भेष चलाहै तथा और सू
त्रों में भीहै सो इनका नहींहै क्योंकि
ये तो वदामी रंग अर्थात् भकवें से कपड़े
पहरतेहैं और वगल के नीचे को पछेव
ड़ी अर्थात् चादर रखतेहैं अन्य तीर्थी सं
न्यासियों की तरह और एक दण्ड अर्थात्
वड़ासा लाठा मानिन्द वरछी के तीरवासा
रखते हैं
और इनके देवभी और प्रकार से माने
जातेहैं जिन देवों को जैनके शास्त्रोंमें त्या
गी कहाहै उन देवों को ये लोग, भोगी देवों
की तरह गहना कपड़ा पहनाकर फल

फूल से पूजते हैं॥
और एक बड़ा आश्चर्य यह है कि सिद्धों को जैनमें अरूपी कहा है सो उनकी रक्तवर्ण (लाल रंग) की मूर्त्ति बनाकर सिद्ध चक्र के नाम से पूजते हैं॥
और इनका धर्म भी जैन से अमिलित (पृथक) है क्योंकि जैनमें दया धर्म प्रधान है और यह पूर्वक हिंसा में धर्म कहते हैं
और जैनमें मुख मूंदके बोलना और निरवद्य बोलना कहा है और ये मुख खोलकर बोलना प्रधान रखते हैं क्यों कि इनोंने फ़कीरी लेते समय तो मुख बांधा था फिर लोकों के वचन कुवचन के न सहने से खोलडाला अब औरों से मुख खुलाकर बडी खुशी गुजारते हैं॥
परन्तु ऐसे नहीं समझते हैं कि मुख तो

मालदार भांडे का मूंदा जाताहै और फोकट का खोल दियाजाताहै और फिर मुख खोलने का आश्चर्यही क्याहै क्योंकि सारा लोक ही मुख खोले फिर रहाहै सो तुमभी ऐसे ही खोल फिरेहो॥

आश्चर्य तो मुख मूंदनें काहै क्योंकि लाखों मेंसेमुख मूंदने वाला कोईविरलाहीऐसा पायाजाताहै जो कार्य दुरराकसे कर्नी मुश्किल होयसो साधु करत्तेहैं॥

यथासूत्र "दुःकराइं करित्ताणं दु. सहाइं सहितुय" इतिवचनात्. और जैनका साधु मुखपर मुख वस्त्रिका लगाये विना कौनसे चिन्ह से मालूम होसके गा १

तर्क॰ यदि तुम कहोगे कि मुख पोतिया मुखपे बांधनी किस सूत्रसे चलीहै तो उत्तर॰ जहां २ मुखवास्त्रिका चलीहै तहां २ ही

मुख बांधनी समझो क्योंकि उसका नामही मुखवस्त्रिकाहै परन्तु तुम बताओ कि हाथ वस्त्रिका कहां चलीहै ? अरे! भाई! तुमनेतो अपनी तर्फ़ से मुंह खोलने के हठमें बहुते रे सूत्रोंमें से अर्थ का अनर्थ करके लिखा है जैसे मुखपत्ती चरचा, पोथी बूटे रायजी की रचीहुईमें पृष्ठ १०२वीं पर लिखाहै कि उ त्तराध्ययन अध्ययन १२वां गाथा ६ठी "हर केशीबल साधुको ब्राम्हण कहते भये कि तेरे होठ मोटेहैं तेरे दान्त बड़े२ हैं इत्यादि परन्तु सूत्रमें देखतेहैं तो यह अर्थ स्वप्ना न्तरगत भी नहींहै॥

सो सूत्र यहहै" कयरे आगच्छइ दित्तरूवे काले विकरालेय फुक्कनासे उम चेलए प सुं पिसाय भूए संकर दूसं परि हरियकंठे॥

अर्थ। कौनहै तू आंवदा चलाजादेत्य

रूप काला विकराल वैठीहुई नासिका नि
सार वस्त्ररेतसे भरे, पिशाच के समान रूड़ी
के नारवे समान वस्त्र पहरेहे कंठ, इत्यर्थः
सो देखलो संस्कृतवाप्राकृतकेराह पूर्वक अ
र्थ करहोहे अपितु नहीतो फिर तुम को
शर्म नहींआती कि ऐसे अनर्थ अर्थात् झू
ठे अर्थ करके लोकों को वहकातेहो और
फिर "गोतमस्वामीजीने मुखपोतियासे मु
खबांधाहैऐसे लिखतेहो परन्तु येंनंहीसमझते
कि सोलहअङ्गुलीका अनुमान खण्डु आ
वस्त्रका मुखपोतिया होताहै सो उससे
मुख कैसे वांधाहोगा इत्यादि चर्चाघणी
हे परन्तु घणो अर्थ और की और नरह
करेहें ॥

और इनके दादा गुरु मणिविजयजी, रत्न
विजय जी आदिक प्रग्रह धारी हुएहें,

क्योंकि इनके गुरू बूटेरायजीने मुखपत्ती
चर्चा पोथी अहमदाबाद के छापेकी में
पृष्ठ ५९ में लिखाहै कि मणिविजयजीने
चढावे के रुपये प्रमाण करे और जब मु
झे वाई रुपये देने लगी तो मैंने नहीं
लिये। इत्यर्थः॥ और बूटेराय वृद्धविजय
जीने तपागच्छ को अपने मनसे विलकु
ल अच्छा नहीं जानाथा परन्तु मुखतो खो
लही चुकेथे जब कहीं पेर नहीं लगने
देखे तब शाहूकारों के लिहाज से तपाग
च्छ धारलिया यह स्वरूप उन्हीं की बनाई
हुई पूर्वक मुखपती चर्चापोथी की पृष्ठ३४
वी से लेकर ४८ वी तक वांचने से ख्याल
करके मालूम करलेना हम क्या लिखें, और
फिर पृष्ठ ७० वीं पर बूटेराय लिखतेहैंकि
१० वें अछेरे में

असंयतियों की पूजा हुईहै सो ऐसेहै कि ज्ञान का नामलेकर धन रक्खेंगे, संवेगी कहावेंगे यात्रा करेंगे, साधु और साध्वी एक मकान में पडिक्कमण करेंगे, और दीवा बालेंगे, इत्यादि॰ सो तुम आपही समझलो कि यह बूटेरावजी का लिखतेहैं॥

और फिर इनके चाल चलन बहुत से तो ९ नवम निन्हव से मिलतेहैं क्योंकि आत्मारामने भी अज्ञान तिमिर भास्कर ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड पृष्ठ ४२ वीं पर लिखाहै कि "नवमा निन्हव अच्छाहै, हमारे से एक दो बातका फर्कहै" इत्यादि॰ सो एक दो बात का फर्क तो इसवास्ते कहतेहैं कि कभी हमही को लोक निन्हव न कहदेवें, असल में एकहीहै॥

इत्यादि॰ कथन हमने उन्ही के बनाये

इन ग्रन्थों में से लिखेहैं सत्यासत्य को विद्वा न् लोग विचार लेवेंगे भूल चूक मिच्छा मि दुक्कडम् ॥

इति प्रथमो भागः
समाप्तः

परम सज्जन और प्रेमी महात्माओं को विदित हो कि यदि कोई पूर्वपक्षी प्रथम भाग को वाचकर ऐसे कहे कि "देखो उत्तर पक्षीने जैनतत्त्वादर्श ग्रन्थ में के गुण तो अङ्गीकार किये नहीं और जो कोई अवगुण थे वे अङ्गीकार किये हैं छलनीवत्। तो उसको हम उत्तर देते हैं कि हे भाई! हम अवगुण के ग्राही नहीं हैं क्योंकि हम तो पहिले ही लिख आये हैं पत्र ७५ वें में कि "जो सनातन सूत्रानुसार जैनतत्त्वादर्श ग्रन्थ मे कथन हैं सो यथार्थ और सत्य हैं"
तो फिर अवगुण ग्राही कैसे जानें ?
अरे भाई! हम तो गुण को अङ्गीकार करते हैं और अवगुण को निकाल के फेंक देते हैं छाजवत्। जैसे कि किसी पुरुषने अच्छी सुफेद कनक अर्थात् गेहूं पकान्न के वास्ते मेदा

णं चतहेव मायं लोभंच उत्थं अकम्यदोषा र याणि वंता अरहा महेसी नकुव्वइ पाव न का र वेई ॥ १ ॥ अस्यार्थः सुगमः ॥

ऐसे अरिहंत देवजीके गुण परम त्यागी अर्थात् विषय भोग सावद्य व्यापार दि सर्वारम्भ परित्यागी अथवा परम वैरागी राग द्वेषसे निवृत्त वीतरागी केवल ज्ञानी के २ अर्थात् सम्पूर्ण लोकालोक, आदि मध्य अंत अतीतअनागत वर्तमान (तस्यकृत्स्नस्य) करामलक वत् समय २ निरंतर देखते भए अथवा परम दान्ति परम शान्ति महा माहन महा नियामक महा सार्थ वाह परमोपकारी परम गोप परमपूज्य परम पावन परम सु शील परम पण्डित परमात्मा पुरुषोत्तम इ त्यादि गुणों का स्मरण अर्थात् जपकरे ॥

(२) अथ गुरु अंग सो दूसरे, निग्रन्थि गुरु जो

द्रव्य गांठ वाधे नहीं अर्थात् पंक्षी की तरह कि
सी पदार्थ का संचय करे नहीं और भाव गांठ
नही अर्थात् लोभ कपट को छोडे सो ऐसे नि
ग्रन्थि गुरु कनक कामनी के त्यागी निस्पृही
अर्थात् जैनका साधु साधक सूई मात्र भी धातु
ग्रहण न करे और एक दिनकी-बालिका को
भी अर्थात् स्त्रीको हाथ न लगावे ९ वाड ब्रम्ह
चारी और ऐसेही साध्वी को पुरुष के पतमें
जानना और क्षान्ति मुक्ती आदिक १० दस प्रका
र के यति धर्म के धर्त्ता जहा ठाणांगे तथा उ
त्तराध्ययन १९ वे गाथा ८९ मी निमम्मो निरहं
कारो, निसंगो चत्त गारवो, समोय सव्व भूए
सु, तसेसु थावरे सुअ॥१॥ लाभा लाभे सुहे
दुःखे, जीवीए मरणे तहा, समोनिन्दा पसंसा
सु, तहा मानोप मानयो ॥ २॥
अस्यार्थः स्तरामः॥ तथा ५ सुमति ३ गुप्तिके

धर्ता अर्थात् (१) प्रथम ईर्या सुमति (सो) सा
ढे तीन हाथ प्रमाण क्षेत्र आगे को देखता
हुआ चले॥

और (२) दूसरी भाषा सुमति (सो) भाषा वि
चारके बोले और किसी को दुःखदाई मर्मका
री और झूठी भाषा न बोले॥

और (३) तीसरी एषणा सुमति (सो) साधु
४ प्रकार का पदार्थ निर्दोष आज्ञा सहित
लेवे जैसे कि १ प्रथम तो आहार पानी नि
र्दोष, जो पुरुष साधु के निमित्त फलादिक
छेदे नहीं छिदावे नहीं छेदते को भला जाने
नहीं और भेदे नहीं ०.२ और पचे नहीं.३ जो
गृहस्थीने अपने कुटुंब के निमित्त अन्न
पानी का आरम्भ किया हो सरस वा नीरस
हो तैसाही ग्रहण करे सो यहतो द्रव्य नि
र्दोष और भाव निर्दोष, सो-ऐसा- सरस-न

खाय कि जिससें काम विकार, रोग विकार
तथा अति आलस्य उत्पन्न होय और ऐसा
नीरस भी न खाय कि जिस्से क्षुधा निवृत्ति न
होयऔर सकाये ध्यान न बनेऔर रोग उत्प
न्न होय तथा दुर्गंछा उपजे इत्यर्थः और
२ दूसरे वस्त्र पात्र निर्दोष सो साधुके निमि
त्त बनवाया न होय तथा मोललिया न होय
जो गृहस्थीने अपने निमित्त बनवाया होय
वा मोल लिया होय अल्पमौल्य वा बहु मो
ल्य हो तैसाही ग्रहण करे सो यहतो द्रव्य
निर्दोष, और भाव निर्दोष, सो ऐसा बहु मू
ल्य भी न होय कि जो अजान मनुष्य को द्र
व्य धारक का विश्वास होय तथा चोर पीछा
करे अथवा स्वभाव में मान प्रकट होय औ
र ऐसा अल्प मूल्य निःसार भी न होय कि
जिससे स्वभाव तथा परजन को दुर्गंछा उ

पजे इत्यर्थः और ३ तीसरे उपाश्रय अर्था
त् स्थान निर्दोष (सो) साधुनि मित्त मकान
बनवाया नहोय तथा मोललिया नहोय
फिर गृहस्थी के वर्तने से जियादा होय तो
उसकी आज्ञासे ग्रहण करे सो यह तो द्रव्य
निर्दोष, और भाव निर्दोष, सो ऐसा चित्रशा
ली आदिक नहोय कि जिस्से मन अनंग
(कामदेव) और विकारादि भजे तथा सराग
वेश्या आदिक का पड़ोस नहोय और ऐ
सा निषिद्ध टूटा फूटा मकान भी नहोय
जो चढ़ते उतरते गिर २ पड़े तथा मट्टी
गिर २ पड़े तथा और जीव जंतु आदि घणे
होय तथा और दुःखदाई होय अप्रतीतका
री होय इत्यर्थः॥ और चौथे ४ शिष्य शा
खा निर्दोष सो लड़का लड़की कुजात नहोय
तथा माता पिता की जात अधूरी नहोय

तथा अंधा बहरा लूंजा नहोय तथा उमर का बङ्गत छोटा नहोय तथा बङ्गत शिथि ल वृद्ध न होय (यथा ठाणंगे व्यवहारे) तथा मोल का नहोय तथा चोरीका वा वि ना आज्ञा का नहोय तो फिर जातिमान् कु लवान् वैराग्यवान् माता पिता आदिक की आज्ञा सहित होतो उसे चोला करे सो

यह तो द्रव्य निर्दोष, और भाव निर्दोष् सो अति क्रोधी नहोय अति कामी नहोय अति लालची नहोय क्योंकि जिसके संग में क्लेश और निन्दा होय यथा उत्तराध्यय ने इत्यर्थः॥ और ४ चौथी आदानभंड मत नक्षेपणीया सुमति सो भंड उपकरण वस्त्र पात्र मर्यादा सहित रक्खे और गृहस्थी के पास रक्खे नहीं अर्थात् गृहस्थी के घररक्खे नहीं और दो वक्त प्रतिलेखणाकरे और ५

पांचमी उच्चार पासवण लेख जल संघण परिठावणी सु०॥ सो देहके मैल एकान्त पृथक् सूकी भूमिका में गेरे जहां कोई जीव जन्तु गडे नहीं और फसके मरे नहीं इत्यर्थः ८॥

और ३ गुप्ति १ मन गुप्ति सो मनके अशुद्ध संकल्पों को रोके॥

२ बचन गुप्ति सो बचन आलपाल वोले नहीं अर्थात् विना निजगुण लाभके बो ले नहीं॥और ३ काय गुप्ति सो काय की च पलता और ममता को त्यागे॥

सो ये ५ सुमति और ३ गुप्तिके धर्ता साधु जन साधकात्माहैं ति नकी सेवा भक्ति करे अर्थात् फ्रासूक एष णीक पूर्वक अन्नपानी देकर तथा वस्त्रपा त्र देकर तथा अपने वर्त्तने से ज्यादा मका

न होतो मकान देकर तथा बेटा बेटी वैरा
ग्य प्राप्त होतो शिष्यरूप भित्ता देकर गुरु
की भक्ति करे और सुख साता पूछे और रोगा
दि के कारण साधु के देखे तो हकीम से पूछ
के निर्दोष औषधि की दलाली करावे॥

और देशान्तर गये साधु की भेट होजाय
तो अपने क्षेत्रमें आनेकी विनति करे और
नगर आते मुनिराज को सुनके भक्त वि
नय करे और क्षेत्रमें रहते हुए साधु की
पूर्वक सेवाकरे और उसके मुखार विन्दसे
शास्त्रार्थ न्याय वाक्य विलास सुने तथापरि
वारी जनों को तथा अन्य नर नारियों को
प्रेरणा करे कि अरे! भाइयो! तुम शास्त्र सु
नों और श्रद्धाकरो क्योंकि संत समागम दु
र्लभ होताहै इत्यादि• और जाते हुए साधु
की प्रदक्षिणा रूपभेट देकर दर्शन करे विन

यसाधे यथा सूत्र विनयव्हारम्॥
अगर इससें कोई मतपक्षी तर्क करे कि साधुको लेने जानेसें क्या हिंसा नही होती है? तो उसको यह उत्तर देना चाहिये कि विना उपयोग चले तो हिंसा होतीहै और सूत्र का न्याय तो ऐसेंहै कि यथा दशवैकालिके उक्तंच "जयंचरे जयंचिठे" इति वचनात्॥ और इसपर कोई फिर तर्क करे कि हमभीतोफूल आदिक जिन भक्तिके निमित्त यत्नसेही तोड़तेहैं॥

तो फिर उसको यह उत्तर देना चाहिये कि जब तोड़ही लिया तो फिर यत्न काहेका हुआ यथा किसी की गर्दन तो उतारी परन्तु यत्न से उतारी। उत्तरम्। अपसोसहै कि जब काटही गेरा तो फिर यत्न काहेका हुआ। खैर तुम्हारे लेखे यत्नही हुआसही परन्तु

शास्त्रमें तो भगवन्त की सेवामें फल फूल च
ढाने की आज्ञाहै नहीं कोंकि सूत्र दशा श्रु
तस्कंधजी तथा उववाईजी तथा विवहा प्रा
ज्ञप्तिजीमे ऐसा लिखाहै कि जब भगवान्
के समवसरण में सेवक जन सेवाके निमि
त्त आवे तब सुचित्त द्रव्य अर्थात् जीव स
हित वस्तु को बाहरही छोडदे जहां तके
भगवन्तजीके विराजमान होने की समव
सरण की मर्यादा के भीतर न लेजाय सोई
हम तुम्हारे से पूछतेहैं कि हे समतावलंबि
तुम फूल आदि सुचित्त द्रव्य से पूजा किस
न्याय से सुखा रखतेहो अथवा शायद तु
म फूलों को और फलों को सुचित्त न मान
ते होगे कोंकि जब सूत्र में मनाईहै और
तुम कहतेहो कि जितने घणे२ चढावे उ
तनेही घनी आज्ञा के आराधक होय अर्थात्

लाभ होय ॥ तर्क ०

अगर तुम यह कुटिलता ग्रहण करोगे कि अपने पहरने खाने के निमित्त सुचित्त द्रव्य लेजाने समवसरण के मनाई है परन्तु भगवान् की भक्ति निमित्त मनाई नहीं है ॥ उत्तर पक्षम् सूत्रमें तो ऐसे नहीं है और स्वकपोलकल्पित कुछ बनाधरो अगर है तो पाठ दिखाओ कि किसी सनातन सूत्रमें लिखा हो कि किसी सेवकने वीतराग भगवान जीकी फल फूलोंसे पूजा करी हो अगर तुम देवोंकी भुलावन दोगे तो हम नहीं मानेंगे क्योंकि देवों का जीता विहार कुछ औरही है तदपि देवताओं के कथन में भी अरिहंत हुए पीछे सुचित्त फूलों का पाठ नहीं है यथा राज प्रश्नी सूत्र पुष्फ वद्दलंविये वइत्ता तथा मानतुंग कृत भक्तामर श्लोक उन्नेद्र हेम

नव पंकज पुंजकान्ति० इत्यादि० इति॥
सो साधु लेने जानेमें तो षट्कायकी हिंसारू
प आरम्भ पूजा प्रतिष्ठा कहांसे सहीह होजावेगा
फिर पूर्वक कथनम् और जो श्रावक ने
दिशावर को चिठ्ठी लिखनी होतो तिसमें
साधु साध्वी अथवा श्रावक श्राविका के गु
णोंकी महिमा लिखे जैसे कि अमुकसाधु वा
साध्वीजीने तथा अमुक श्रावक वा श्राविकाने
अमुक त्याग करा है रस आदिक का॥ तथा
अमुक तप कियाहै इंद्रिय दमन आदिक
तथा ताप शीत सहन आदिक तथा अन
शन आदिक का इत्यादि तथा अमुक श्रा
वकने छती सक्त छती योगवाई ब्रम्हचर्य
आदि चार खध माहला खंध अंगीकार कि
याहै इत्यादि देशांतरों के विषे महिमा वि
स्तारे क्योंकि ऐसे कथन को सुनके हरएक

मजुब वाले लोक तथा अनज्ञान लोक भी आश्चर्य को प्राप्त होंगे कि देखो जैनी लोक स्ववश वर्ती, स्त्री आदिक के भोग को तजकर ब्रम्हचारी होजाते हैं सो यह जैन धर्म की प्रभावना है॥

अथ ३ तृतीय धर्म अंग धर्म जो दुर्गति पड तो धारई इति धर्म ते धर्म क्षमा दया रूप धर्म तथा संवर निर्जरा रूप धर्म यथास्त्य नोत्पद्यते धर्मोदया दानेन वर्द्धते॥ क्षमया च स्थाप्यते धर्म्मः क्रोध लोभाद्विनश्यति ॥ १॥ अर्थात् १ धर्म का पिता ज्ञान २ माता दया ३ भाई सत्य ४ बहन सुबुद्धि ५ स्त्री दमितेन्द्रिय ६ पुत्र सुख ७ घर क्षमा ८ वैरी क्रोध लोभ ॥ १॥ ते धर्म आचरण की विधि लिखते हैं

प्रथम तो पूर्वक निग्रन्थ

गुरु से भक्ति रूप प्रीति समाचरे सो गुरु

जी के मुखार विन्दसे शास्त्रादि उपदेश सुन के बोध को प्राप्त करे और नौं तत्व षट् द्रव्य के स्वरूप को बूझे तिसके विषय प्रथम तो आत्म सत्यस्वरूप चितानंद का भाव एकांत वास्तव में स्थितकरे जैसे कि मैं चैतन्य अरूपी अखण्डित अविनाशी एकांत कर्मका कर्ता और भोक्ताहुं और कोई दूसरे ईश्वरादि के करे कर्मकामैंनहीं भोक्ता हूं और किसी सज्जनादि के करेकर्मकामैं नहीं भोक्ताहूं मैं स्वआत्म सुख दुःख रूपकर्म का कर्ता और भोक्ताहूं इति ॥

(२) दूसरे परआत्मा सो अनंत संसारीजीव चराचर रूप सूक्ष्म स्थूल सर्वअन्य२ अपने२ सुख दुःख रूप कर्मके कर्ताऔर भोक्ता हैं ॥

(३) तीसरे परमात्मा सो जिस्को लोक ईश्वर

कर्मों का तो नाश करदेते भए और आ
गेको काम क्रोधादि प्रवृत्ति के अभावसे
हिंसादि सर्वारम्भ प्रति त्यागके प्रभावसे
नया कर्म उत्पन्न होता नहीं तस्मात् कार
णात् मोक्ष अर्थात् सिद्ध होजातेहैं
सोई ऐसे सादि अनंत सिद्ध होते भए
जैसे कि अपने २ मतावलंबी हर एक
नर, नारी तप जप और पूजन धूपन
संध्या गायत्री अथवा निमाज़ आदि अने
क उपकर्म करतेहैं सो कईतो हरि आ
दिक की सेवा भक्ति मेंही लीन हुआ चा
हतेहैं कि हमको भक्तिहीमें रम रहना चा
हिये और कितनेक आत्म रूप ज्योतिरू
प हुआ चाहतेहैं और कितनेक खुदाके
नजदीक हुआ चाहतेहैं सो हेभाई यही
रीति सादि अनंत सिद्ध अर्थात् परमेश्वर

रणात् गुण घाति कर्म अर्थात् अज्ञान रूप भ्रम दूर हुए बिना बोध होता नहीं और बोध हुए बिना काम क्रोधादि प्रकृति दूर होती नहीं और काम क्रोध हटे बिना पर पीड़ारूप हिंसा मिथ्यादि आरंभ की निवृत्ति होती नहीं और आरम्भ की निवृत्ति हुए बिना केवल बोध होता नहीं और केवल बोध हुए बिना मोक्ष होता नहीं इत्यर्थः॥

और जो भव्य जीवहै तिसको स्यानागत अर्थात् न्याय मार्ग पड़े का मोक्ष होता है नहींतो नहीं क्योंकि भव्य जीव अनादि सांत कर्म सहितहै तस्मात् कारणात् पूर्व अज्ञानादि भ्रमके नाश होनेसे बोध को प्राप्त होते भए और बोधको प्राप्तहोके फिर पूर्वक आरंभ से निवृत होके तप जप रूप शुद्ध प्रवृत्ति में प्रवर्तके पूर्व

अहमक! टहल तो तूं करही रहाहै मेरे तुष्ट होने का तुझे क्या लाभ हुआ तो फिर वह रंक बोला कि मै तेरे नज़दीक यानि पड़ोस रहा चाहताहूं तो फिर शाहूकार कहनेलगा कि मेरे पड़ोस रहने से क्या तेरा मुख मीठा होजावेगा और क्या तुझे बलरूप धनादि सुख मिलजावेगा॥ अरे मूर्ख! तू मेरे तुष्ट होने पर यह मांग कि मैंभी शाहूकार और सुखी होजाऊं और दरिद्रता के दुःखसे छूटजाऊं और मेरी प्रीति यानि कृपा होनेका यही सारहै कि तुझे अपना भाई यानि अपने सदृश शाहूकार और सुखी करलूं और तेरा नौकर कहाना और दरिद्रता का दुःख दूर करूं इत्यर्थम्। सोई इस दृष्टान्त वमूजिव तो तप जप और सत्य शील दानादि

होने की है॥
अथ(४) स्व परम तंत्रक अंग और फिर कितनेक कहतेहैं कि हम परमेश्वर या खुदातो होना नहीं चाहतेहै इसतो खिदमत यानि भक्ति में नज़दीक हुआ चाहतेहैं तो फिर उनको ऐसे पूछना चाहिये कि शाहूकार के नज़दीक बैठने सेतो शाहूकारी का सुख प्राप्त नहोगा, शाहूकार की सेवा करनें का तो यही मकसदहै कि शाहूकार तुष्टहोकर शाहूकारही करदेवे दृष्टान्त
जैसे कि कोई रंक जन शाहूकार की टहल बहुत काल तक करता रहा तो फिर एक दिन शाहूकार तुष्टहोकर बोला कि हे भाई! जो मांगनाहै सो मांग, तो वह रंक बोला कि मैंतो तेरी टहल करनी चाहताहूं तो फिर वह शाहूकार मुस्काकर बोला कि अरे!

है नहीं॥२॥ और कितनेक
पुरुष ऐसे कहतेहैं कि सिद्ध होके
फिर वही मुड़ २ के अवतार धारण करते
हैं सोई उनको पूर्वक सिद्धों की तो खवर
है नहीं वे मतावलंवी तो वैकुंठ अर्था
त् स्वर्गनिवासी देवताओं की अपेक्षा से
कहते हैं क्योंकि स्वर्ग निवासी पलोपम
सागरोपम की आयु भोगके अर्थात् वहुत
काल पीछे मनुष्य लोक अर्थात् मृत्युलोक
में उत्पन्न होतेहैं इत्यर्थ॥ सोई हेभाई! हम
तुम को हितार्थ न्याय वचन से समझाते
हैं कि सिद्ध मुड़के अवतार नहीं धार
तेहैं यदि मुड़कर भी जन्म मरण रहा तो
सिद्ध अर्थात् मुक्त भाव क्या हुआ ? क्यों
कि जव सकल कार्य सिद्धही होचुकेतो
फिर जानवूझकर स्वाधीन भला उपाधिमें

का यही फल है कि कर्म कलंक से निवृत्त होजाय और जन्म मरण की व्याधि से निवृत्त होजाय अर्थात् परमेश्वर रूप परमात्म व्यापी होरहे इति॥ १) और फिर कितनेक मतपक्षी देवोंको और इंद्रको परमेश्वर मानतेहैं जैसे धर्मराज वत् और कितनेक राजाओं को और वासुदेवों को परमेश्वर मानतेहैं जैसे राजा रामचंद्र अथवा वासुदेवजीको।

सोई उन पुरुषों को दीर्घ दृष्टि अर्थात् परमात्म स्वरूप की तो खबरहै नहीं क्यों कि ये राजा आदि तो बली अर्थात् अवतार हुएहैं परन्तु परमेश्वर नहींहैं और जब वे अवतार योगाभ्यासी होकर परमात्म पदको व्यापेहैं (सो) उस पदकी उन पेट भराऊंओं को खबरही

और कितनेक पुरुष ऐसे कहतेहैं कि सत्यात्म चिदानंद एक अंग रूपहै और सर्व शरीर अर्थात् सर्व चराचर जीव तिसीके उपांग रूपहैं॥ उत्तरपक्षी-अरेभाई एक अंगसें अनेक सुख दुःखादि की अन्यान्य अवस्था कैसे संभवहै? जैसे कि एक हाथ और एक पैर के तो तप चढ़ा और दूसरे को नहीं, अपितु ऐसे नही, सर्वही अंगाको सुख दुःख समही व्यापताहै

सो सर्व जीवों को सुख दुःख एक सम होय तो तुम्हारा पूर्वक कथन सहीहहै नतो नहीं॥५॥

और कितनेक मतावलंबी शशि घट बिंब रूप दृष्टान्त मुख्य रखतेहैं कि जैसे आकाशमें एक चंद्रहै और जलके घड़े जितनें हों उनमें उतनेंही चंद्र बिंब भासेहैं सो

कों पड़ेगा, सुखमें से दुःखके दुःखमें तो कर्म गेरतेहैं सोई सिद्धों के तो कर्म रहेही नहीं जैसे शास्त्रोंमें कहाहै कि " दग्धबीजं यथात्यंतं, प्राडर्भवतिनांकुरम्‌॥कर्म बीजं तथा दग्धं, नारोहति भवांकुरम्॥ १॥ अस्यार्थः सुगमम्॥३॥ फिर कितनेक मतावलंवी पुरुष ऐसे कहतेहैं कि चिदानंद सत्यात्म लोकालोक एकही व्याप कहै॥ उत्तरपक्षी· सो उन मतावलंवियों का यह कथन शशशृङ्ग वत्‌है क्योंकि जव एकही चिदानंदहै तो फिर उपदेश किसकोहै और उपदेश देनेवाला कौनहै और सत्यादिक सुकृत करना किसकेवास्तेहै और मिथ्यात आदिक दुष्कृत किसके वास्तेहै और सुकृत दुष्कृतका कर्ता भोक्ता कोनहै?॥ ४॥

भिन्न २ अंतरहै ऐसेही चैतन्य, आकाशावत् ए कहीहै परन्तु भिन्न २ शरीरोंसे भिन्न २ भास मानहै और घट रूप शरीरके नाश होनेप र चैतन्य आकाश रूप अविनाशी एकहीहै॥

उत्तरपक्षी॰ यहभी कहना तुम्हारा बाव ले की लंगोटीवत्है क्योंकि जब तुम्हारी यह श्रद्धाहै कि शरीर के विनाश होने पर अर्थात् मरजाने पर चैतन्यआकास रूप सत्यमें सत्य व्यापी स्वभावही होजाताहै तो फिर तुम्हारा आर्यसमाज समाजनां और सत्य समाधिआ दिका उपदेश करना निरर्थक है क्योंकि आर्य अनार्य और ऊंच नीच सबही शरीरके त्यागके अंतमें अर्थात् घटनाश वत् मरजानेमें सबही मोक्ष होंगे अर्थात् आकाशमें आकाश रूपहोर हेंगे तो फिर सत्य आदि धर्मकाफल और मिथ्या आदि अधर्म का फल कौन पावेंगे और कहां

ऐसेही एक चिदानंद सर्व अंगोंमें भासमानहै॥

उत्तरम्। यहभी तुम्हारा कहना पूर्वक शून्यहै क्योंकि चंद्र के बिंब सर्व घटों में भास होनेहैं परन्तु समही भासमान होनेहैं जेसेकि द्वितीया का होय तो द्वितीया का और पूर्णिमा का होय तो पूर्णिमा का। परन्तु यह नंही होता कि किसी घटमें तो द्वितीयाके चंद्र का बिंब और किसीमें पूर्णिमाके चंद्र का बिंबहोसो तुम्हारे कहने वमूजिब तो सर्व शरीरोंमें एकही चैतन्य भासमानहै तो फिर सर्व शरीरों की एकही अवस्था अर्थात् एक सरीखा बल वर्ण मति स्वभाव और सुख दुःख होना चाहिये सो एक सम है नंही तो तुम्हारा दृष्टान्त आल माल हुआ॥

६ और कितनेक मतांतरी ऐसे कहतेहै किआकाश तो एकहीहै परन्तु भिन्न२ घडोंमें

जैसे कि वैदिकाभास (आर्य) लोक कहतेहैं कि ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकामें पृष्ठ ११७ में लिखाहै कि जब यह कार्य्य रूपसृष्टि उत्पन्न नहीं हुईथी तब एक ईश्वर और दूसरा जगत् कारण अर्थात् जगत् ब नाने की सामग्री, मौजूदथी और, और आ काशादि कुछ नथा यहांतक कि परमा णु भी नथे॥ उत्तरपक्षी

सो यह भी कहना तुम्हारा ऐसाहै कि जैसे वंध्याके पुत्रके आकाशके पुष्पोंका सेहरा बांधा, क्योंकि जब जगत् बनाने की सामग्री मौजूदथी तो फिर ईश्वर को जगत् का कर्त्ता किस न्यायसे ठहरातेहो सिवाय मिहनत के। जैसे कि मैदा घी और खांड त्यारहै और कड़ाही, कड़छी औ र अग्नि लकड़ी सब त्यारहैं तो फिर

भोगेगो इत्यर्थम् ७॥ और कितनेक
मतांतरी ऐसे कहतेहैं कि जैसे साबत् सीसे
के विषे एक मुख दीखताहै और जबसीसा
फूट जाताहै तब जितनें सीसेके खंड होतेहैं
उतनेही मुख दीखतेहैं सो ऐसेही ब्रह्म तो
एकहीहै परन्तु ताहीके अनेक खंड रूप स
र्व अंगों के विषे चेतनता भासमानहै॥
उत्तरपक्षी॰ यहभी तुम्हारा कहना तुम्हारीही
मुख चपेटिका रूपहै क्योंकि सर्व शास्त्रों के
और सर्व मतो के विषयमें यह वृत्तान्त प्रक
टहै कि चिदानंद सत्यात्म अखण्डित अवि
नाशीहै तो फिर अखण्डित पदार्थके अनेक
खण्ड कैसे भए इत्यर्थम् ॥ ८॥
और ऐसे २ अनेक मतान्तरों के परस्पर विरो
ध और वाद विवाद रूप अनेक कथन लि
ख सक्तेहैं परन्तु यहां संक्षेप मात्रही लिखेहैं

कि एकएक जीव तो अनादि अनंत कर्म सहितहै और एकएक जीव अनादि सांत कर्म सहितहै॥

उत्तरपक्षी· हम तुमको पूछतेहैं कि जब आत्मा एकहीहै तो फिर क्या आधी आत्मा को अनादि अनंत कर्म लगेहुएहैं और आधी आत्माको अनादि सांत कर्मलगेहुएहैं ! सो तुम किस न्यायसे एक आत्मा मानतेहो और दोप्रकारके पूर्वक कर्मों के सहित जीव मानतेहो क्योंकि तुम्हारे पहले कहने को तुम्हाराही पिछला कहना उत्थापर ह्राहै॥

कस्मात्(कारणात्) कि जीव अनंतहै, कोई तो अनादि अनंत कर्म सहितहै और कोई अनादि सांत कर्म सहितहै इत्यर्थस्॥ १०

सो यही कथन जैनीकाहै क्योंकि जो निश्चन

हलुवा बनाने वाले की क्या सिद्दताहै सि
वाय परिश्रम अर्थात् मिहनत के। क्योंकि
कर्तातो पदार्थ का वह कहाताहै कि जो
निज शक्तिसे अनहुई वस्तु अकस्मात् पैदा
करके पदार्थ बनावे क्योंकि होती वस्तुका
बनाना, सवारना तो मजदूरीहै इत्यर्थः
और फिर यहभी बताओ कि जगत् बना
ने की सामग्री क्याथी और प्रमाण का
क्या स्वरूपहै और सामग्री काहेकी बनती
है और प्रमाण किस काम आतेहैं औ
र जगत् बनाने की सामग्री आकाश
बिना काहे में धरीरही होगी और फिर आ
काश के विनाश होनेपर सामग्री कहां
धरी रहेगी॥ ९ और फिर आर्या भास हठाव
लम्बी लोक प्रथम तो कहतेहैं कि सत्या
त्म चिदानंद एकहीहै और फिर कहतेहैं

जीवहूं अर्थात् अनादि सांत कर्म सहितहूं
क्योंकि कुछक अज्ञान कर्मका नाश हुआहै
तो कुछक निज परका स्वरूप बोधहुआ
सो यही अज्ञानादि कर्मके अंत होनें अर्था
त् मोक्ष होनेका रस्ता प्रकट हुआहै तो
अब इस रस्तेपर चलन रूप पुरुषार्थ
करना चाहिये क्योंकि मैं चिदानंद सुख
दुःखका बेदक और शब्द रूप, गंध,
रस, स्पर्श का परीक्षक अनादि काल
से चुरासी लाख योनिके विषे परंपरा
से कर्मों की वासनाओं द्वारा आगेको न
ये कर्म पैदा करने वाले काम क्रोध आ
दि को आचरता हुआ भवसागर के विषे
भ्रमता चला आताहूं और अब मनुष्य
जन्म इन्द्रिय संपूर्ण जाति कुल विवेक
धन संयुक्त और देश काल शुद्धस्थाना

दृष्टिसे देखो तो आत्मा का वही स्वरूप सत्य
है कि जो हम ऊपर परमात्मा धिकार में
लिखआयेहैं जैसे कि जीव अर्थात् चिदानं
द संसार में अनंत अन्यन्यहैं हां अलवत्ता
सर्व जीवों का स्वरूप अर्थात् चेतना लक्ष
ण एकसमहीहै ॥

अथ ५ आत्मशिक्षा

सो चैतन्य तत्व स्वरूप को विवेक द्वारा बो
ध कर और पूर्वक आत्म परात्म, परमात्म
तत्वको बूझकर ऐसे विचार कि मेरे बड़े
भाग्यहैं जो मुझे सत्संग और जड़ चेतन्य
बोध रूप लाभहुआ कैसे कि गुरुके वच
न रूप दीपक से रज्जु कोसर्पऔरसर्पकोरज्जु
इत्यादि भ्रम रूप अंधकार का नाशहुआ
और सम दृष्टि रूप नेत्रों करके यथार्थभा
व बंध मोक्ष रूप भासपड़ताहै किमैं भव्य

खीके रखने वाले और जूतीके पहरने वाले और डेरा बांधके एक जगह रहने वाले ते असाधु कुगुरु हैं क्योंकि यह पूर्वक गृहस्थी के धर्महैं साधुको न चाहियें॥
(३) कुधर्म सो जूती मूली अग्नि देनेसे क्योंकि जीवहिंसा होने से कुछ भगवान्के भजन का कारण नहींहै और तुलसी कन्या विवाहने मेंभी कोई धर्म नहींहै क्योंकि जिस्को माता कहचुके उस्को मुड़ २ के विवाहने में धर्म कैसेहै अपितु महाअधर्म है यहतो मूर्खों के ठगखाने के राह अपनी कल्पना से निकाल धरेहैं कोई शास्त्र के अनुसार नहींहै और शीतला मसानी देवी भवानी मूर्त्ति पूजने में और बट (पिप्पल) बृक्ष पूजने में और त्रस्यस्थावर की हिंसामें और यज्ञादि होम अजादी में

गत किनारे आन लगाऊं तो अब परम्परित कर्मोंकी बासना के प्रभाव से कनक कामिनी के वश वर्ती होकर हिंसा झूठ चोरी धरजा मरजा मानो जगत् का धन लूटलूं इत्यादि अनाचार आचरण करके कभी फिर न लोभ मोह के प्रवाह में बहजाऊं सो अब धर्म कार्य मे सावधान होऊं ऐसे विचार करके धर्म अर्थात् शुद्ध क्रिया रूप प्रवृत्ति सकृत आचरण विधि के विषय में सावधान होवे इसलिये धर्म की विधि लिखतेहैं सो प्रथम कुगुरु को जाने क्योंकि झूठे सच्चे दोनो जानने चाहियें ॥ (सो)

(१) कुदेव सरागी काम क्रोध में वर्त्तमान यथा कामिनी सहित शस्त्रसहित जिनका कथनहै और (२) कुगुरु सो कनक कामिनी के रखने वाले अर्थात् धनके और

मारगा तथा ७ कुविस्म तथा १५ कर्मादान, जिनका स्वरूप आगे लिखेंगे अथवा कुगुरु, कुदेव, कुधर्म, सेवनरूप मिथ्यात्त इत्यादि अकार्य करेहोय स्ववश अथवा परवश तो इनको सद्गुरु गंभीर पंडित पुरुषों के आगे ऐसे कहे कि मेरेसे अमुक अपराध हुआ सोमेरी भूलहुई और मैंने बुरा किया परन्तु अब नहीं करूंगा इत्यर्थः॥

और दूसरे वर्त्तमान कालका संवरअर्थात् पूर्वकाल में जो अशुद्ध कर्म सेवनकरेथे उन कर्मोंका पश्चातापीहोवे और आगेको शुद्ध कर्म अर्थात् दया सत्यादि अङ्गीकार करने को उत्साहवानहोवे और मिथ्यादि अशुद्ध योगों को रोकता हुआहै तिस कारण वर्त्तमान काल में संवर वान् होताभयाहै इत्यर्थः

और तीसरे अनागत अर्थात् जो काल

इत्यादि अधर्म हैं कुछ आत्मिक सुखदाता नहीं हैं इसलिये इन तीनों को तजो और पूर्वक सुगुरु सुदेव, सुधर्म को अङ्गीकार करो.(६) अथ ६ठा धर्म प्रवृत्ति अंग, अथ धर्म कोंकी प्रथम तो सूत्र भगवती जी सत्त क ८ उदेशे ५वें १४७ " पच्चखाण के अधिकारणि तस्यानुसारणी अतीतकाल" अर्थात् वीतगये काल आश्री अलोवणा करें अर्थात् पूर्वजन्मांतरों के यथा तेलीके १ तंबोलीके २ भडभूंजेके ३ काछीके ४ माछीके ५ सिगलीगरके ६ बाज़ीगरके ७ कसाईके ८ दाईके ९ ठठयारके १० भठयारके ११ मनयारके १२ चम्मारके १३ कुयाणके १४ इत्यादिक आर्य अनार्य जन्मो के तथा इस जन्मके पाप अर्थात् अनाचार कर्म बाल हत्या तथा विश्वास घात तथा धरोड़

त्रस्य काय (जो) जिनका त्रासभाव प्रकट मा लूम होय, यथा (१) द्वीन्द्रिय कीटकादि, (२) त्रीन्द्रिय षट्पदी यूकालिक्षादि, (३) चतुरिन्द्रिय मक्षिकादि और (४) पंचेन्द्रिय सो १ जलचर जीव मच्छादि २ स्थलचर जीव गाय घोड़ा आदि ३ खेचर जीव पक्षी तोता चटिक आदि ४ उरपर जीव सर्पादि ५ भुजपर जीव चूहा नेवलादि॥ सो ये छः काय रूप जीव हैं सर्व जो इनका सम्पूर्ण वर्ण १ गंध २ रस ३ स्पर्श ४ स्वभाव ५ संस्थान ६ आयु ७ उगाहणा ८ आदि कथन देखने हों तो जैन. शास्त्र दसवैकालिक जीवाभिगम पन्नवणाजी में विस्तार सहित देख लेना सो ये सर्व जीव जन्तु सुखाभिलाखी हैं यथा दशवैकालिके अध्ययन ६ गाथा ११ वीं

प्रवत्तक आया नहींहै आगेको आवेगा ति
स आश्री पच्चखाण अर्थात् हिंसा मिथ्या
तादि कर्मका संपूर्ण तथा यथा शक्ति देश
मात्र प्रहार करे तिसकी विधि इस रीतिसे
जानलेनी कि प्रथम तो

षट्काय रूप जीवके स्वरूप की लक्ष्यता क
रे जैसे कि १ पृथ्वी काय जो पृथ्वी रूप श
रीर स्थित एकेन्द्रिय जीवहै क्योंकि पृथ्वी स
चेतन्यहै विना स्पर्श किसीएकजातिके शस्त्र
के,और ऐसेही २ आप्य काय जो पानी रूप
शरीर स्थित जीवहै,और ऐसेही ३ तेज का
य जो अग्नि रूप शरीर स्थित जीवहै और
ऐसेही ४ वायुकाय जो वायु रूप शरीर
स्थित जीवहै और ऐसेही ५ वनस्पति काय
जो वनस्पति रूप शरीर स्थित जीव वृक्षादि
सूक्ष्म स्थूल सर्व हरिके जीवहैं और ६

नर वा नारि को जैनका साधु वा साध्वी कहते हैं और जो पुरुष सम्पूर्ण पांच आश्रव का त्यागी नहोय और पांच महाव्रतों का सम्पूर्ण धारी नहोय और गृहस्थाश्रम मेंही रह कर पूर्वक षट्काय हिंसा रूप कर्म को यथा शक्ति देशव्रत अर्थात् थोड़ासाही मोटे २ आश्रव सेवने का त्याग करे तिसको बारह व्रती श्रावक कहतेहैं सोई अब बारह व्रतों का स्वरूप सूत्र उपासग दशाजी तथा आवश्यक के अनुसार लिखते हैं॥

अथ १२ व्रतअंग साख्या

अथ प्रथमाऽनुव्रत आरम्भः॥ सो प्रथम व्रत में श्रावक चलते फिरते त्रसजीव को जान बूझके मारने की बुद्धि करके नमारे जबतक जीवे तो फिर ऐसे नकरे॥ फ़्गा ऊआ अन्न भाठ वा भठ्ठी में भुनावे

सव्वे जीवा वि इच्छंती, जीवियं नमरिज्जइ,
तम्हा पाणवहं घोरं, निगंथा वज्जयंतिण, १
तथा अन्य शास्त्रे, श्लोक। यथा मम प्रियाःप्रा
णा स्तथा तस्यापि देहिनः। इति मत्वा नकर्त्त
व्यो घोरःप्राणि वधो बुधैः १॥ अस्यार्थः सुगमः
इत्यादि ऐसा जानकर विषय भोग से
विरक्त होकर सर्वथा षट्काय की हिंसा
रूप कार्य से पांच आश्रव १ हिंसा २ अस
त्य ३ अदान ४ मैथुन अर्थात् स्त्रीसंग ५
परिग्रह अर्थात् धनसंचय, इन पांचोंका
सम्पूर्ण त्यागी होय और १ दया २ सत्य ३
दान ४ बंभ ५ निस्पृहा इन पांच महा व्र
तों को अङ्गीकार करे और इन पांच महा
व्रतों की संपूर्ण विधि देखनी होतो दसवै
कालिक सूत्र अध्ययन४ में देखलेनी और
इस विधि पांच महा व्रत पालने वाले

से उपरंत संचय करे नंही और शीत कालमें १ महीने तथा डेढ महीने से उपरंत संचय करे नंही और चैत्त के महीने से लेकर आश्विन (असोज) के महीने तक रोटी दाल आदिक ढीली वस्तु रातबासीरख के खाय नहीं ऐसे पहिले अनुब्रत के पांच अतिचार कहे हैं॥

१ प्रथम नौकर को तथा पशु घोड़ा बैल आदिक को तथा पक्षी काग सूआदिक को रीस करीने पिंजरेमें तथा रस्सी आदिक से बांधे नहीं॥

२ दूसरे नौकर आदिक को तथा पशु बैल घोड़ादिक को क्रोध करीने गाढ़ा घाव मारे नहीं॥

३ कुत्ते के तथा बैल आदिक के अंग (अवयव) कान पूंछ आदि छेदन करे नहीं॥

नहीं और घुणा अन्न पीसे पिसावे नहीं
और दले दलावे नहीं और सिरका गेरेनहीं
और मक्खी का मुहाल तोड़े नहीं और गोवर
सड़ावे नहीं और विनाछाने पानी पीवे न
हीं और आटा दाल आदिक मे विना छाना
पानी गेरे नहीं और रस चलित पदार्थ को
वर्ते नहीं अर्थात् जिस खाने पीने की चीज
का अपने वर्ण गंध रस, स्पर्श से प्रतिपत्
अर्थात् मीठे से खट्टा और खट्टे से कटु आ
वर्ण गंध रस स्पर्श होगया हो और जिस
आटे में तथा मिष्टान्न पकान्न बूरा आदि
क में लट पड़जाय तो उसे वर्तेनहीं अर्थात्
बहुत कालके लिये वस्तु संचय करके रक्खे
नहीं जैसे कि चतुरमास में आठ तथा पंद्रह
दिनके उपरंत कालतक संचय करेनहीं औ
र ग्रीष्म काल (गर्मी) में १५ दिन वा १ महीने

३ झूठा उपदेश करेनहीं जैसे कि तुमने अमुक कार्यमें अमुक झूठ बोलदेना ऐसे कहै नहीं॥

४ स्त्रीका मर्म अर्थात् अनाचार बिलकुल प्रकट करे नहीं क्योंकि स्त्री चंचल स्वभाव होतीहै सो पहिले तो बुराई करलेतीहै और पीछे बुराई को सुनकर जलदही कूए में कूद पड़तीहै इत्यर्थ स्त्रीका मर्म प्रकाशित न करे अथवा किसीकी भी चुगली करे नहीं॥

५ झूठी बही चिठी लिखेनहीं इति द्वितीयानु व्रतम्॥

३ अथ तृतीयानु व्रत प्रारम्भः॥

तीसरे अनुव्रत में तालातोड़ना १ धरी वस्तु उठालेनी २ कूंवल लगानी ३। राहगीरलूट लेने ४। पड़ी वस्तु धनी की जानके धरनी ५, इत्यादि मोटी चोरी करे नहीं जबतक जीवे

४ ऊंट घोड़े बैल गधे तथा गाडी आदिमें सा
मर्त्थ के प्रमाण से उपरान्त भार धरे नहीं॥
५ नौकर के तथा पशु गाय घोड़े आदिक के
घासखाने के समय अन्तर देनहीं अर्थात्
भूखे रक्खे नहीं इति प्रथमाऽनुव्रतम्॥

अथ द्वितीयाऽनुव्रत प्रारम्भः॥

दूसरे अनुव्रतमें बिना मर्यादा मोटा झूठ बोले
नही यथा सूत्र कन्नाली गोआली भूआली॥
"थापणमोसा कूडीसाख" इत्यादि। झूठ बोले
नहीं जबतक जीवे तो फिर ऐसे कभी न करे १
किसी को झूठा कलंक अर्थात् तोहमत लगा
वे नहीं॥
२ किसी के छिपे हुए अपराध को प्रकट करे
नहीं क्योंकि कोई चाहे कैसाही हो नजाने अ
पनी बुराई सुनकर कुछ अपघात आदि अका
र्य करले इत्यर्थम्॥

लोक विहार में अपयश होताहै और गर्भा
दि कारण होने से अपघात तथा बाल
घातादि दूषण होताहै और दूषण के प्र
भाव से परलोकमें नर्क प्राप्त होकर (अ
ग्नि प्रज्वालन) तप्तथंभ बंधन, मारन ताड
न जम पराभव रूप दुःखों का भागी होता
है तस्मात् कारणात् काम क्रीड़ा हास वि
लास आदि करे नहीं॥

४ चौथे पराये नाते रिश्ते सगाई
ब्याह जोड़े नहीं करावे नहीं अपितु किं प्र
योजनं बंबूल वृक्षवत्॥

५ काम भोगकी तीव्र अभिलाषा क
रे नहीं क्योंकि कामा ध्यवसायमें सुमति वि
नष्ट होजातीहै इत्यर्थ। इति॥

अथ ५ पंचमा ऽनुव्रत प्रारम्भः॥

पांचम अनुव्रत में तृष्णाका प्रमाण करे

तो फिर ऐसा अकार्य कभी नकरे॥
१ कोई चीज चोरकी चुराई जानकर फिर स
स्ती समझकर लोभके वश होकर लेवेनहीं
॥२ चोर को सहारा देवे नहीं जैसे कि जावो
तुम चोरी करलाओ मैं लेलूंगा और तेरेपे
कोई कष्टपडेगा तोमैं सहारा दूंगा॥३ राजा
की जगात मारे नहीं॥४ कम तोल कम माप
करे नहीं॥५ नयी बस्तुकी वन्नगी दिखाके
फिर उसमें पुरानी वस्तु मिलाके देवे नहीं
॥इति तृतीयाऽनुव्रतम्॥३॥

अथ ४ चतुर्थाऽनुव्रत प्रारम्भः॥
चौथे अनुव्रत में स्वपरिणीत स्त्रीपे संतोष
करे परस्त्री से कामसेवन का त्याग करे
यावज्जीव तक फिर कभी ऐसा नकरे॥
॥१॥ अपनी मांगी हुई स्त्री जैसे कि उ
सी शहर में सगाई होरही होयतो उस

पुष्टि होत भई है इत्यर्थं॥

अथ प्रथम गुण ब्रत प्रारम्भः॥

प्रथम गुण ब्रतमें दिशाकी मर्यादा करे जैसे कि ऊंची दिशा पर्वत महल ध्वजादि क और नीची दिशा कूआ आदिक और ति र्छी दिशा पूर्व १ दक्षिण २ पश्चिम ३ उत्तर ४ इत्यादिक दिशाओं की मर्यादा करे जैसे कि मैं इतनें कोस उपरंत स्वेच्छा कायाक री आरम्भ व्यापारादि के निमित्त जाऊंगा न हीं क्योंकि उतने कोस उपरंत बाहरले क्षे त्रके छः काय के हिंसा रूप वैरकी निवृत्ति रहेगी इत्यर्थम्॥

फिर ऐसे नकरे कि पूर्वक जो ऊंची १ नी ची २ तिर्छी ३ दिशाका जितना प्रमाण क राहो उसे विसारे देवे. क्योंकि जो विसारेगा तो शायदज्यादा जाना पड़जाय, और ४ चौथे

से परिग्रह अर्थात् सोना चांदी और रत्ना
दिक तथा मकानात खेत माल गाय भैंस
और घोड़ा आदिक की मर्यादा करे जैसे कि
मैं इतना पदार्थ रक्खूंगा और इतने उप
रंत नही रक्खूंगा और फिर भी ऐसे नकरे
पूर्वक मर्यादा उलंघे नही जैसे कि मैंने
५००० हजार रुपया रक्खाथा और अब
ज्यादा रुपया होगयाहै तो अब मकानादि
बनवालूंगा इत्यर्थः॥ इति पंचमाऽनु
व्रतम्॥५॥

अथ ७ सात शिक्षा व्रत लिखते हैं

सो इन ७ सात शिक्षा व्रतों में
से प्रथम ३ तीन शिक्षा व्रतों को गुणव्र
त कहते हैं (कस्मात्कारणात् कि) इन तीन
गुण व्रतों के अङ्गीकार करनेसे पूर्वक
पांच अनुव्रतों को संवर रूप गुण की

उपभोग्य पदार्थ उसको कहतेहैं कि जो पदार्थ एक वार भोगाजाय जैसे कि दाल भात रोटी पक्वान्न आदि और परिभोग्य पदार्थ उसको कहतेहैं कि जो पदार्थ वार २ भोगाजाय जैसे कि फूल कपड़ा स्त्री मकान आदि सो ऐसे पदार्थों की मर्यादा करलेवे क्योंकि संसारमें अनेक पदार्थहैं और सर्व पदार्थ पांच प्रकार के आरम्भ से सभी के वास्ते बनतेहैं सो मर्यादा करे बिना सब पदार्थों की पैदायश का आरम्भ रूप पाप हिस्से वस्तु जिव आता है क्योंकि इच्छाके प्रमाण करे बिना नजाने कौनसा शुभाशुभ पदार्थ भोगने में आजाय तस्मात् कारणात् ऐसे मर्यादा करलेवे कि जैसे २४ चौवीस जातिका धान्य अर्थात्

ऐसे न करे कि मैने पूर्व की दिशाको ५०
योजन जाना रक्खाहै और पश्चिम को भी
५० योजन जाना रक्खाहै सो पश्चिम को जा
नेका तो काम कम पडताहै और पूर्वको
बहुत दूर तक जाना पड़ताहै तो पश्चिम
को २५ योजन जाऊंगा और पूर्वको ७५
योजन चला जाऊंगा(ऐसे करेनहीं)
५ पांचवें ऐसे भ्रम पडगयाहो कि मैने
नजाने पश्चिमको ५० योजन रक्खाथा औ
र पूर्वको १०० योजन रक्खाथा नजाने प
श्चिमको १०० योजन रक्खाथा तो फिर
पूर्वको और पश्चिमको ५० योजन उप
रंत जाय नहीं॥इति १प्रथम गुणव्रतम्॥

अथ द्वितीय गुणव्रतप्रारम्भः॥

द्वितीय गुण व्रतसे उपभोग्य परिभोग्य पदार्थ
का यथा शक्ति प्रमाण करे अर्थात्

तेल ५ मीठा(गुड़ आदि) ६ मधु (सहित) ७ मद्य (मदिरा) ८ मांस ९ इति॥

सो इनकी मर्यादा करे परन्तु मद्य १ मांस २ ये दो विषय, सब आर्य पुरुषोंने अभक्ष कहीहैं, सो इनको तो बिलकुलही त्यागे और ऐसेही चर्म छाल सण ऊन रेशम और कपास के वस्त्र इनकी मर्यादा करे परन्तु चर्मके वस्त्र तो बिलकुल त्यागदे और रात्रि भोजन का भी त्याग करे क्योंकि रात्रीको भोजन करने में लौकिक जूम, लीख, मच्छर, मकड़ी आदि पड़ने से रोगादि होजाते हैं यथा श्लोक॥

मेधां पिपीलिका हन्ति, यूका कुर्याज्जलोदरम्। कुरुते मक्षिकावान्तिं कुष्टरोगं च कोलिका॥१॥ इत्यादि॥

और सभी मतोंमें रात्री भोजनका निषेध

अन्नहै तिसकी मर्यादा करे कि इतने
जातिके अन्न नहीं खाऊंगा जैसे कि म
ड्आ चोलाई कंगनी स्वांक इत्यादि॰
धान्यका बिलकुल त्यागकरे और फलोंकी
मर्यादा करे परन्तु जो जमीन से फल उ
त्पन्न होताहै जैसे कि लस्सन गाजर मू
ली इत्यादि॰ लाखों किस्महैं और जो त्रस
जीव अर्थात् चलते फिरते जीव सहित
फल, फूल, साग, हो जैसे कि गूलर फल,
पीपल फल, बटफल, आदि और फूल क
चनार, फूल सिंबल, फूलगोभी, आदिऔर
साग नूंणी, साग चसा, इत्यादि तो बिलकु
लही त्यागने चाहिये औरअज्ञात फलभी
न खाना चाहिये और ऐसेही ९ नौ प्रकार
की विघय सूत्र समाचारी में कहीहैं
दुग्ध १ दही २ मक्खननोणी ३ घृत ४

४ क्रीत पका या (जैसे होलें भुर्धी आदिका) खाय नहीं और ५ भूख को अनिवारक जिस औषधि अर्थात् जिस फलसे भूख न मिटे उसे खाय नहीं जैसे जिस फलका थोड़ा खाना और बहुत गेरने का स्वभावहै (यथा ईख सीताफल अनार सिंघाड़ा जामन जमोया कैत बिल्ल इत्यादि) खाय नहीं अथ दूसरे गुण व्रतमें अशुद्ध कर्त्तव्यका त्यागकरे जैसे कि १५ पंद्रह कर्मी दान हैं ॥

अथ १५ पंद्रह कर्मी दान का नाम मात्र स्वरूप लिखतेहैं कर्मीदान उसको कहतेहैं कि जिस कर्तव्यके करनेसे महा पाप कर्म की आमदनी होय इत्यर्थः॥

१ प्रथम अंगारकर्मी से कोयले करके बेचने और काच भठी पंजावे लगवाने

है यथा महाभारत पुराण में श्लोक। मद्य
मांस मधु त्यागं सहोडुंबर पंचक। निशा
हारं नरस्त्रीयाःपंचमं ब्रम्ह लक्षणम्॥१॥
इति॰ और परलोक में अधर्म (हिंसादि)
होनेसे दुर्गतादि विरुद्ध होताहै और इत्या
दि शास्त्रों द्वारा घना विस्तार जानलेना॥
और १४ चौदह नेमभी इसी ब्रतमें गर्भित
है॥ सो फिर कभी भोग्य परिभोग्य की म
र्यादा वान् पुरुष ऐसे नकरे कि १ मर्यादा
उपरंत सचित वस्तु फलादिक अन्यचित
अर्थात् गाफल होकर खावेनहीं और २ सु
चित वस्तुको स्पर्शकर मर्यादा उपरंतकी
अचित वस्तुभी खाय नहीं जैसे वृक्ष से
गूंद तोड़के खाय तो गूंद अचितहै और
वृक्ष सुचितहै इत्यादि॥
और ३ अध पका खाय नहीं और

सज्जी, शोरा, सुहागा, मनशील इत्यादिक का वाणिज्य करे नहीं॥ ३ तीसरा रस कु वाणिज्य। सो मदिरा, दुग्ध दही, घी, गुड़, मधु (सहित) खांड, इत्यादिक ढीली वस्तु का वाणिज्य करे नहीं॥ ४ चौथा केश कुवाणिज्य। सो द्विपद दास, दासी, खरीद कर बेचने, चोपद गाय, भैंस, बैल, घोड़ा प्रमुख, बेचने के निमित्त खरीदने फिर पाल २ कर नफ़ा लेकर बेचने, तथा पंछी तोता, मैना, तीतर, बटेरा, मुर्गी, प्रमुख, खरीद के पाल कर बेचने, इत्यादिक वाणिज्य करे नहीं॥ ५ पांचवां विष कुवाणिज्य। सो संखिया, सोमल, बच्छनाग, अफ़ीम, हरताल, चरस, गांजा, प्रमुख, तथा शस्त्र वाणिज्य, इत्यादि वाणिज्य करे नहीं॥ ये ५ पांच कुवाणिज्य कहे हैं॥

और भाठफोंकना इत्यादि कर्म करे नहीं॥
और २ दूसरे बन कर्म। सो बन कटावे
नहीं बन कटानेका ठेका लेवे नहीं॥
३ तीसरे साडी कर्म। सो गाडी बहल प
हिये बेडा हल चर्खी कोल्हू चूहा घीस.
पकडने का पिंजरा इत्यादि बनवाके बेचे
नहीं॥ ४ चौथा भाडी कर्म। सो ऊंट बैल
घोडा, गधा गाडी रथ किरांची इनका भाडा
खावे नही॥ ५ पांचवां फोड़ीकर्म। सो खान
लोहेकी वा नून आदिक की फुडावे नहीं त
था पत्थर की खान खुदावे नहीं। ये पांच५
कुकर्म कहेहैं। अब ५ पांच कु वाणिज्यक
हतेहै॥ १ प्रथम दांत कुवाणिज्य। सो हा
थी के दांत, उल्लूके नख, गायका चमर, मृ
गके सींग, इत्यादिक का वाणिज्यकरेनहीं॥
२ दूसरा लाख कुवाणिज्य। सो। लाख नील

कबूतर, कुत्ता, बिल्ली, मम्भुरद, पालने पो
षणे तथा और दुष्ट शिकारी जनका पो
षण इत्यादि कर्म करे नहीं। परन्तु द
या निमित्त दुःखी जीवका दुःख निवार
ने को पोषे तो अटकाव नहीं॥

इति १५ पञ्चदशकर्मादानानि॥

और इन्ही पंद्रह कर्मादान केडे महाक
र्म आवनें आश्री सात ७ कुविस्न कह
तेहैं यथा श्लोक। द्यूतंच मासंचसुरा
च वेश्या, पापर्द्धि चौर्यंपर दारसेवा।
एतानि सप्त व्यसनानि लोके घोराति
घोरं नरकं नयन्ति, ॥१॥ अस्यार्थः॥
१ जूआ खेलने वाला। २ मांस भक्षणे वाला।
३ मदिरा पीने वाला। ४ वेश्या गमन क
रने वाला। ५ शिकार खेलने वाला। ६
चोरी करने वाला। ७ परस्त्री सेवने वाला।

अब ५ पांच सामान्य कर्म कहते हैं।
१ प्रथम, यंत्र पीडन कर्म। सो सरसों, तिल, इक्षु आदिक पिड़ावे नहीं॥ २ दूसरा निलीछन कर्म। सो बैल घोडा खस्सी कराना तथा ऊंट बैल को दाग देना तथा कुत्ता आदिक के कान पूंछ काटने तथा चोरआदि को बेंत लगानें और फांसी आदि देनेका हुकम चढ़ाना पड़े ऐसी नोकरी सो इत्यादिक कर्म करे नहीं॥ ३ तीसरा दावाग्नि दान कर्म। सो बनमें आग लगानी तथा खेत की बाड फूंकनी इत्यादि करे नहीं॥ ४ चौथा शोषण कर्म। सो कूआ, तलाव आदिक का पानी सुकावे खेतमें देनेको तथा नयापानी पेदा करने को इत्यादि करे नहीं॥ ५ पांचवां असतिजनपोषण कर्म। सो शोक के निमित्त तीतर, बटेर,

मैं जाय ॥ १ महारम्भी अर्थात् १५ कर्मादान के आचरने वाला। २ महापरिग्रही अर्थात् अत्यन्त मुर्च्छी। जैसे आना रुपया व्याजके लालच से चंडाल से वाणिज्य, कसाई से वाणिज्य, तथा जो पुरुष मोटे पाप करके द्रव्य कमावे तिसके साथ लेन देन करके खोटी कमाई के द्रव्यका भोगी होवे सो पुरुष ॥

३ तीसरा, पंचेन्द्रियजीव। जो मानुष की तरह गर्भ से पैदा हुआ और खाना, पीना, सोना, विषय भोग (स्त्रीसेवन) करना, और सात धातु करके देह धारक, ऐसे पंचेन्द्रिय जीवका जानके घात अर्थात् शिकार करने वाला।

४ चौथा मद्य, मांस, अर्थात् पूर्वक पंचेन्द्रिय जीवकी धातु के भक्षण वाला।

ये सात कुविसनके सेवने वाले मनुष्य घोरसे घोर दुःख स्थान नर्कमें पड़ते हैं॥ इति॥ और इन सातों कुविस्नोंका अन्यान्य दूषण कहतेहैं यथा गौतम ऋषि कुल बाला बोधे गाथा १७ वा१८ वीं "जूओ पसत्तस्स धम्मस्स नासो, मांसं पसत्तस्स दयाअनासो। वेसापसत्तस्स कुलस्सनासो, मद्य पसत्तस्सजसस्स नासो,॥१॥ हिंसापसत्तस्ससुधम्मनासो, चोरीपसत्तस्सशरीरनासो। तहापरत्थी सुपनस्सयस्स, सब्बस्स नासो अहम्मागईय,॥२॥ अस्यार्थःसुगमः

सो ये १५ पंद्रह कर्मादान और ७ सात कुविस्नको श्रावक जन, तत्वज्ञ अर्थात् बुद्धिमान् सत्संगी पुरुष अवश्य सेव अर्थात् जरूरही त्यागे क्योंकि भगवती सूत्रमें लिखाहै कि ४ लक्षणसे जीव नर्क गति

(२) द्वितीय ऐसीही अनन्तही प्यास बेदना।
(३) तृतीय अनन्तही शीत बेदना। यथा लौकिक वर्फ़ से अनन्त गुणअधिक शीत बेदना॥ (चतुर्थ अनन्तही गर्मी यथा इस लोक में कोई एक हाथी अजबनके रहने वाला, एक दिन रास्ता भूलकर कलर स्थानमें फिरने लगा और ग्रीष्म ऋतुके प्रभावसे गर्म धूप, गर्म पवन और गर्म रेतसे पीडित और भूखा प्यासा शीतल जल और छायाको चाहता हुआ फिरता था तो तब एक बाग और तलाव नज़र पड़ा तो हाथीने जाकर तलाव में प्रवेश करके बहुत सुख पाया और पानीमें लेट २ भूख प्यास और तनको बुझाता हुआ सुख नींदमें सोगया क्योंकि गर्मीके क्लेशसे निवृत्त होगयाथा॥

सो इन ४ चार लक्षणोंका धर्त्ता मनुष्य नर्क गतिमें जाताहै॥ वह नर्कगतियहहै यथा पाताल में अर्थात् १००० हजार योजन का प्रथम कांड पृथ्वी मण्डल का तिसके नीचे बहुत दूर जाकर असुरपुरीआती है कि जहां भुवनपतिदेवोंका निवास है और जिसको कितनेक मताव लम्बी यमपुरी तथा बलिसद्म कहतेहैं। और उसके नीचे और अशुद्ध पृथ्वीहै वहां १० दस प्रकार की तीव्र बेदनाहै यथा (१) प्रथम वहां के पैदा होने वाले जीवको अनन्तहीभूख रहती है परन्तु खानेको १ एक दानाभी नहीं मिलता तस्मात् कारणात् अनंत क्षुधा बेदना सहते हैं और जो खाय तो अशुद्ध वस्तु (रुधिरआदि) विरूप गात ग्रहण करते हैं॥

निराश्रय निराधार सज्जन माता पितादि से रहित दुःख भोगतेहैं क्योंकि नर्क में ग मीदि विहार नहींहै नर्क मे तो पाप के क र्ने वाला पुरुष काल करके कुंभीमें तथा क्षेत्र वासमें स्वतःही कर्माऽधीन अशुद्ध परमाणुओंमें कीड़ों की तरह मनुष्या कार पारावत देह धारी पैदा होताहै और दूसरे असुर वेदना नर्क में प्राणी सहतेहैं जैसे कसूर कार को हुकम कार ताड़ताहै ऐसे असुर यानि यमराज वा बलीरा जके हुकम से नार्कियों को उनके क र्मानुसार नाना प्रकार की पीड़ा देतेहैं। यथा जिनोंने इस लोकमें बनकटाने का कर्म कियाहै उनको वहां वैसे बड़े २ तीक्ष्ण आरे से चीरते हैं परंतु वह कर्म योगसे मरते नहीं १॥

सो इसी दृष्टांत, जो नर्क में प्राणी गर्मी मे प
ड़ा हुआहै यदि कोई पुरुष वहांसे उसे नि
काल कर लुहार की भट्ठी के जलते२ खे
र अंगारों में सुलादेवे तो वह नार्की जीव
हाथी के तलाव के समान सुख माने, क्यों
कि खेर अगारों से अनंत गुणी गर्मी न
र्क में स्वतःही है तस्मात् कारणात् नार्की
प्राणी खेर अंगारों में सुखमानेहै। सो इस
दृष्टांत करके नर्क में अनंत गर्मी की
बेदना है॥

५ पञ्चम अनंत रोग॥ (६) छठा अनंत
शोक॥ (७) सातवां अनंत जरा॥
(८) आठवां अनंत ज्वर॥ (९) नवम अनं
त दाह॥ और (१०) दशम अनंत दुर्गन्धि।
यह१० दश प्रकार की तीव्र बेदना नार्की द
शा में अधम नर भोगतेहैं और नर्क में

उनको सज्जी आदिक सह्हा तारवत् दार के विक्रय से कुंड भरके उसमें उनके त नुमें पच्छु लगाके गेरदेतेहैं ॥ ५॥
और जिनोंने जोहड तलाव में दारुके ऊ ए पानी में कूद२ कर स्नान कियेहैं (क्योंकि उसमें अनंत जीव होतेहैं वह देहके खा र लगतेही दग्ध होजातेहैं) सो उनको वै तरणी नदीमें डुबो२कर पीड़ादेतेहैं ६॥
और जिनोंने मदिरा, गांजा, पोस्त, भांग वा तमाकूका विस्म अंगीकार कियाहै उनको रां ग, तांबा, तरूआ, सीसा, गालकर पिलाते हैं ७ ॥ और जिनोंने जूंम, लीख, मां गणु, भिंड, विछू, आदि जंतुओं को नख करके पेर करके वा अग्नि करके माराहै उनको राध, लोहू संयुक्त कीडोंके कुंड में गेरदेतेहैं ८॥

और जिनोंने गाडी आदिक का भाड़ा खाया है उनको लोहे के गर्म रथमें जोतके वज्रके बालु (रेत) गर्म से चलाते हैं २॥
और जिनोंने कोहलू पीड़नेके कर्म करेहैं उनको तिल, सरसों की तरह कोहलू में पीड़ते हैं अनार्य मछारी मारकेर जन्म के और आर्या कई जन्म के पापों से ३॥
और जिनोंने बेडरा आदिके भुर्थे करेहैं तथा चरो आदिक कीहोलं करीहैं तथा सिघाड़े शाक रकंदी आदिक को भाठ में दाबतेहैं. उनको वज्रके रेत को गर्म लाल केसूके फूल की तरह करके उसमें दाब २ के पीड़ा देतेहैं ४॥
और जिनोंनें करेले मूली और जामन को चूरा लगा २ धूप लगाईहै तथा कंदरगा जर आदि की कांजी यानि अचार गेरे हैं

वाले ॥ ३ तृतीय आसिष्य वचरो अर्था
त् वात २ में झूठ बोलने वाले तथा झू
ठी गवाही देनेवाले ॥ ४ चतुर्थ कुड़
तुले कुड़ मापे अर्थात् कम तोलने के
म मापने वाले ॥ ये ४ चार लक्षणों वा
ले नरतिर्य्यग्यौन गतिमें जाते हैं ॥
सो तिर्य्यग्यौन गति कैसीहै कि जो मृत्यु
लोक में पशु जीव बनचारी तथा ग्रहों में
मनुष्योंने रक्खे हुए ते गृहचारी पशु ऊं
ट, बैल, घोड़ा, गधा, गाय, भैंस, बकरी, इ
त्यादि ते लज्जारहित, स्नान रहित, वस्त्र र
हित, जिन का सुख दुःख ताप सीत भूख
प्यास पर वशहै क्योंकि अपना दुःख सुख
किसी को बता नहीं सकते हैं कि हमको
जाड़ा लगैहै हमें भीतर बांधदो तथा धूप
लगैहै छायामें करदो तथा हमें भूख प्या

ओर जिनोंने मांस भक्षण कियाहै उनको उन्हींका अंग तोड २ कर अग्निमें शूलाओं द्वारा पकाकर खिलातेहैं ९॥
ओर जिनोंने कामाधीन होकर बे सवरीसे परस्त्री गमन कियाहै उनको गर्म किये हुए लोहे के पुतलों से चिपटा देतेहैं १०॥
ओर ऐसी २ अनंत बेदनायें नर्क में होती हैं। २ द्वितीय तिरश्चीन गतिमें जानेके ४ चार लक्षण कहेहैं। सो प्रथम मायालिये अर्थात् दगाबाज़ी करने वाले।
२ द्वितीय बहुमायालिये अर्थात् भेष धारके साधुआदि कहाके धन कनककामिनी संग्रह करने वाले तथा माता पिता का ओर गुरु का तथा शाह का उपकार भूलके अवर्ण वाद बोलने वाले तथा मित्र द्रोही यानि विश्वास देके घात करने

और ३ तीसरे सारांउकोसियाए अर्थात् करुणा वान् होय यथा दुःखी जीवको देखके घट में मुर्झावे और जो दुःख मिटने लायक होय तो तन धन बल के जोर से मेटदेने का स्वभाव होय। और ४ चौथे असच्छरियाए अर्थात् धनका रूपका बलका प्रवारका मा न करे नहीं तथा शुद्ध प्रणाम से दान देवे और दान देके मान करे नहीं॥ ये ४ चार ल क्षण मनुष्य गति में जानेके हैं वह म नुष्य गति कैसीहै कि जो मृत्यु लोक अ ढाई द्वीप प्रमाण है यथा पृथ्वी के मध्य में १ जंबू नाम द्वीपहै सो गोल चंद्र संस्था न है और लाख योजन पक्की की लंबाई चौड़ाईहै और गिर्दनमाई तिगुणी से कु छ अधिकहै और तिसके विषे ७ सात क्षे त्र और ६ पर्वतहैं। सो ४ चार क्षेत्रों में तो

स लगीहै सो इसें खाने पीने को देवो इत्या दि और नाक छिदा सींग बंधातेहैं और पी ठ लदातेहैं और अपनी हिम्मत से ज्यादा भार वहतेहैं और वाट चलतेहैं परंतु ये नहीं कह सकते कि हम से इतना भा र नहीं उठता तथा इतनी दूर नहीं च लाजाता मतलव स्वेच्छा नहीं, परिवर्त, सकते, पराधीन रहतेहैं इति॥

और ३ तीसरे मनुष्य गतिमें जानेके ४ चार लक्षण कहेहैं। सो १ प्रथम पग भद्दियाए अर्थात् सरल स्वभावी होय। और २ दूसरे पगविणयाए अर्थात् वि नयवान् यथा माता पिताके और गुरुके और शाहके तथा और अपने से बडे पु रुष के साथ मीठा बोलने का और उन की आज्ञा में चलने का स्वभाव होय।

रहाहै और तिसके गीर्दनमाय दूना धात
खंड नाम द्वीपहै और तिसकी गीर्दनमाय
कालोदधि समुद्र द्विगुणी चौड़ाई से घूम
रहाहै। और तिसके गीर्दनमाय द्विगुणी चौ
ड़ाई से पुष्कर द्वीपहै तिसके मध्यमें मा
नुषोत्तर पर्वतहै सो मानुषोत्तर पर्वत त
क मनुष्यों की उत्पत्तिहै॥

वे मनुष्य माता पिता के
गर्भसे पैदा होतेहैं और बाल्यावस्था में वि
द्यापढतेहैं और असि नाम तलवार का
और मसी नाम स्याहीसे लिखने का और
कृषि नाम कसाएा का कर्म सीखतेहैं
और करने के वक्तमें करतेहै और तरु
ण वस्थामें अच्छा खाना पीना शृंगार भू
षण वस्त्र पहनकर भोग संयोग का
स्वभाव पूर्ण करतेहैं और माता पिताओर

निखालस अकर्म भूम मनुष्य अर्थात्
मनुष्यहैं और १ क्षेत्रमें अकर्म भूम और
कर्म भूम मनुष्य शामिलहैं और २ क्षे
त्रों में निखालस कर्म भूम मनुष्यहैं
सो तिसमें से एक क्षेत्रको भारत खगड
कहतेहैं सो भारत खण्ड जंबूद्वीपका
१९०वां टुकडाहै और तिस भारत खण्ड
में नदियें और पर्वतों के प्रभाव से छः टुक
ड़े अर्थात् छः खण्ड हैं सो ३ खण्ड का राज
वासुदेव करताहै और ६ खण्ड का राज च
क्रवर्ती राजा कर्ताहै और इनकी छुटाई
बडाई लंबाई चौडाई उंचाई और निचाई
जैनके शास्त्र (जीवाभिगम और जम्बूद्वीप
पन्नत्ती आदिक) में देखलेनी॥ और इस
जंबूद्वीप के गिर्द नमाय लवण समुद्र दो
लाख योजन की चौड़ाई से चारों तर्फ घूम

४ चौथे अकाम निर्जराए अर्थात् कष्ट पड़े पर नियम कुल धर्म से बाहर न होने वाले ये ४ चार लक्षण देवगति में जाने वालेके हैं। वह देव गति कैसी है। जोकि मृत्यु लोक से राज् पर्यंत क्षेत्र उलंघ के ऊर्ध लोक अर्थात् स्वर्गलोक की पृथ्वी वज्र स्वर्ण म यीहै तिसके ऊपर स्वर्ग निवासी अर्थात् वैकुंठ निवासी देवताओं के विमान अ र्थात् मकानहैं और वहां उत्पात-

सभाके विषे गर्भ विना रत्नोंकी सि ध्याके विषे देवता उत्पन्न होताहै और देव ता के उत्पन्न होतेही सिध्याका वस्त्र तंदूर की रोटी की तरह फूल जाता है और विमा न बासी देव देवियें तब थेई २ कर मंगल गातेहैं तब वह देवता दो घड़ी के भीतर ही ३२ बत्तीस वर्ष के युवान की तरह यु

गुरू की सेवा करतेहैं और दान देतेहैं और परमेश्वर के पद को पहचानतेहैंऔर अनेक शुभाशुभ कर्म कर्तेहैं ॥

और ४चौथे चार लक्षण देव गतिमें जानेके कहेहैं। सो १प्रथम सराग संयमी अर्थात् साधुवृत्ति संतोष शीलके पालने वाले और कनक कामिनी बंधन रूप गृहाश्रम को त्यागके अप्रतिबंध विहारी परोपकार के निमित्त देशाटन करने वाले ॥

२ दूसरे संयमा संयमी अर्थात् गृहाश्रम धारी। यथा विधि गृह धर्म पूर्वक पांच अनुव्रतादिक समा चरण वाले॥

३ तीसरे वाल तपस्वी अर्थात् अज्ञान कष्ट जैसे स्वआत्म परआत्म चीन्हे बिना पंचाग्नि आदिक ताप शीत सहने वाले ॥

में कायम रहना चाहिये, तो फिर वे देवते कहते हैं कि तुमको तुमारे परिवारी जन स्वर्ग का स्वरूप पूछेंगे तो तुम विना स्वर्ग की रचना देखे क्या बताओगे सो तुम च लो स्नान मंजन करो और स्वर्ग के रत्नम य स्थान और बाग आदि और अपसराओं के नाटक आदि देखो। फिर वह देव वैसे ही करता है और पूर्व प्रीति तो टूट जाती है और और देव देवियों की नयी प्रीति होजाती है और एक नाटक की रचना को दो हजार वर्ष लगजाते हैं इस करके देवता मृत्युलोक में विना कारण नहीं आसक्ता है और देवता स्वे च्छा चारी विक्रय शक्ति करके नाना प्रकार के रूप बना कर नाना प्रकार के पुष्प फ ल सुगंधि आदि सुखों के भोगी होते हैं और इनका संपूर्ण आयु आदि स्वरूप

वान होकर चमक के उठ बैठताहै और दे
खकर स्वर्ग की अद्भुत रचना को बहुतआ
श्चर्य को प्राप्त होता है तब वे देव, दवियें
ऐसे पूछते हैं कि तुमने क्या सुकृत ज
प तप दान शील रूप करा जो स्वर्गवा
सी देव हुएहो।

तब उस देव को शक्तिहै(पूर्वजन्म देख
ने की) तो वह अपने पूर्वजन्म को देखकर
ऐसे कहता है कि मैं अमुक क्षेत्रसे अमु
क नर, अमुकी करणी से देवता हुआहूं
और अब मेरे पूर्व सज्जन संबंधी मेरे त
जे हुए कलेवर को दहन करने को लेचले
है और ऐसे कहतेहैं कि नजाने कहां पैदा
हुआ होगा सो जो तुम कहो तो मैं उनसे
ऐसे कह आऊं कि मैं तो जप तप के प्रभाव
से देवता हुआहूं सो तुम लोगोको भी धर्म

दुर्गंधि आवे ॥ ५ क्रोधी होय ॥ ६ क्रोधीसे प्रीति होय ॥ २ तिरश्चीन गतिमें से आकर मनुष्य हुआ हो तिसके छः लक्षण। १ लोभी होय ॥ २ कपटी होय। ३ झूठा होय। ४ अति भूखा होय। ५ मूर्ख होय। ६ मूर्ख से प्रीति होय ॥

३ तीसरे मनुष्य गतिमें से आकर मनुष्य हुआ होय तिसके छः लक्षण ॥ १ सरल होय ॥ २ स्वभागी होय। ३ मीठा बोलने वाला होय। ४ दाता होय। ५ चतुर होय। ६ चतुर से प्रीति होय ॥

४ चौथे देवगति से आकर मनुष्य हुआ होय तिसके छः लक्षण ॥

१ सत्यबादी, दृढ़ धर्मी होय। २ देव गुरु का भक्त होय। ३ धनवान् होय। ४ रूपवान् होय। ५ पंडित होय। ६ पंडित से प्रीति होय ॥ सो इन चार गति की गति आगति रूप

देखना हो तो जैनके शास्त्रों में वरवबी देख
लेना। सो ये ४ चार गतिरूप संसार का स्व
रूप केवल ज्ञानी ऋषभदेवसे लेकर महावी
र स्वामी पर्यंत अवतारोने केवल दृष्टि क
रके करामलक वत् देखाहे और परोपका
र निमित्त शास्त्र द्वारा भाषण कियाहे॥
और मैंने तो यहां किंचित् नाम मात्र ही
भाव लिखाहे और अब २ दूसरे, जो४चार
गति में से किसी एक गतिमें से आकर म
नुष्य गति पाताहे तिस मनुष्य के ४चारों
गतियों के आश्रय अन्यान्य छः छ' लक्ष
ण कहेहैं

१ प्रथम नर्क गतिमें से

आकर मनुष्य हुआहो तिसके छ'लक्ष
ण। सो, १ काला, कुरूप, क्रोधी होय॥२रोगी
होय॥ ३ अति भयवान् होय॥ ४ अगमें से

को सुख दुःख दायक होंगे॥ क्योंकि कि ये क्रूर कर्मन रूपको देखकर रीझते हैं, न धन की रिश्वत (वक्षी) लेते हैं, और न ही बलसे डरतेहैं इसलिये १ प्रथम कर्म विपाक के कारण को जानना चाहिये य था समवायाङ्ग में ३० महा मोहनी कर्म कहेहैं उनका करी जीव, महा मोहनी क र्मी से वांधा जाताहै इसलिये प्रत्येक पुरुष को चाहिये कि जहांतक हो उनसे बचने का उद्योग करे वे महा मोहनी कर्म ये हैं

यथा

(१) जीवको पानीमें डुबो २ के मारे तो महा मोहनी कर्म वांधै०

(२) त्रस्य जीवको अग्निमें जालके धूम्रमें घोटके मारे तो म०

(३) त्रस्य जीवको श्वास घोटके मारे तो म०

भव भ्रमण से उदासीन होकर स्वात्म हित
कांक्षी, दुर्गति पडने के कर्मो से निवृत्त होय
परंतु किसीके निमित्त नहींहै अपनी आत्मा
के निमित्त हीहै जैसे किसी पुरुषने अप
ने कोठे में कांटे बखेर लिये तो फिर वह
कांटे उसी पुरुष को भीतर जाते आते को
दहेंगे और किसी को क्या अफसोस, तथा
किसी पुरुष ने भीतर वड़के अफ़ीम खाली
कि मुझे कोई अफीम खाते को देख न ले
वे तो भला किसी को क्या वहतो उसी को
दुःखदाई होगी। अथवा किसीने भीतर
बैठके मिश्री खाई तो फिर किसी को
क्या सुनावेहै और क्या हिसाब करैहै भा
ई। तेराहीमुंख मीठा होगा इति ॥
ऐसे ही शुभाशुभ कर्त्तव्यका विचारहै क्यों
कि जो शुभाशुभ कर्म करेंगे वे उन्हीं

(१५) चाकर ठाकर को मारे, प्रधान, राजाको मारे, स्त्री पुरुष को मारे, तो म०

(१६) एक देशके राजाकी घात चिंतन करे तो म०

(१७) पृथ्वी पति राजा का घात चिंते तो म०

(१८) साधु का घात चिंते तो म०

(१९) सत्य धर्म में उद्यम करने को हटादेवे तो म०

(२०) चारतीर्थोंके अवगुण वाद बोले तो म०

(२१) तीर्थङ्कर देवके अवगुण वाद बोले तो म०

(२२) आचार्य जीके उपाध्यायके अवगुणवाद बोले तो म०

(२३) तपस्वी नहीं तपस्वी कहावे तो म०

(२४) पण्डित नहीं पण्डित कहावे तो म०

(२५) विद्यावच्छ का भरोसा देके विद्यावच्छ न करे अर्थात् रोगी साधु को गच्छ से निकाले कि चल तेरी टहल करूंगा और फिर टहल न करे तो म०

(४) त्रस्यजीव को माथे घाव गेरके मारे तो म०
(५) त्रस्य जीवके माथे गीला चाम वांधके धूप में मारे तो म०
(६) गूंगे गहले को मारके हंसे तो म०
(७) अनाचार सेवके गोप न करे अर्थात् खोटा कर्म करके फिरछिपावे तो म०
(८) अपना अवगुण पराये माथे लगावे तोम०
(९) राजा की सभामें झूठी साखी भरे तो म०
(१०) राजा की जगात (महसूल) मारे अर्थात् राजाके धनआने को रोके तो म०
(११) ब्रह्मचारी नहीं ब्रह्मचारी कहावे तो म०
(१२) बाल ब्रह्मचारी नहीं बालब्रह्म चारी कहावे तो म०
(१३) शाहका धन लूटे शाहकी स्त्रीभोगेतो म०
(१४) पंचो का घात चिंतन करे तो म०

उ० दान देके पछतावने से०

४ प्र० अकुली अर्थात् जिस पुरुष से पुत्र पुत्री न होय किस ?

उ० जो वृक्ष रस्ते के ऊपर हों जिनसे अनेक पशु और मनुष्य फल फूल खावें और छाया करके सुख पावें ऐसे वृक्षों को कटवावे तो०

५ प्र० वन्ध्या किस कर्म से होय ?

उ० गर्भ गलावे तथा गर्भ गलाने की औषधि देवे तथा गर्भवती मृगी का वध करे तो०

६ प्र० मृत्त वन्ध्या किस कर्म से होय ?

उ० बैंगण आदिका भुर्था करे तथा होलें करे तथा कंद मूल खाय तथा मुर्गी आदिक के अंडे (बच्चे) मार खाय तो०

७ प्र० अधूरे गर्भ गल२ जायें किस कर्म से ?

(२६) गच्छमें छेद भेद पाड़े तो म०
(२७) हिंसा कारी अर्थात् पाप कारी शास्त्रका
उपदेश करे तो म०
(२८) अनहुए देव मनुष्य के भोगों की वांछा
करे तो म०
(२९) देवता आवे नंही कहे मेरेपे देवता
आवे है तो म०
(३०) जो अलोभना करके निः शल्य होय
उसको अवगुण वाद वोले तो म०॥इति
कर्म विपाक ग्रन्थ में से ३० सामान्य कर्म
वंध फल कहते हैं यथा
१ प्रश्न, निर्धन किस कर्म से होय ?
उत्तर- पराया धन हरने से०
२ प्र० दरिद्री किस कर्म से होय ?
उ० दान देनेको वर्जने से०
३ प्र० धनतो पावे परंतु भोगना नंही मिले कि
स

११प्र० मूंगा किस कर्म से होय ?

उ० देव धर्मकी निंदा करे तथा निर्ग्रंथ गुरुकी निंदा करे तथा गुरु के, मुंह मचकोड़ के छिद्र देखे०

१२प्र० बहरा बोला किस कर्म से हो ?

उ० पराया भेद लेनेको लुक छिपके बात सुने तथा निंदा सुनने का स्वभाव होय तो०

१३प्र० रोगी किस कर्म से होय ?

उ० गूलर (उदुम्बर) आदि फल खाय तथा चूहे घीस पकड़ने के पींजरे वेचे तो०

१४प्र० वहुत मोटी स्थूल देह पावे किस०

उ० शाह होके चोरी करे तथा शाहका धन चुरावे तो०

१५प्र० कोढ़ी किस कर्म से हो ?

उ० वनमें आग लगावे तथा सर्पको मारेतो०

१६प्र० दाहज्वर किस कर्म से हो ?

उ० पत्थर मार २ के वृक्षके कच्चे पक्के फल फूल पत्ते तोड़े तथा पंक्षियों के आलने तोडे तथा मकड़ी के जाले उतारे तो

८प्र० गर्भ मेंही मर २ जाय तथा योनि द्वार में आके मरे किस कर्मसे ?

उ० महा ऽऽरंभ जीवहिंसा करे मोटा झूठ बोले तथा रूपोत्तम साधु को असूझता आहार पानी देवे तो ०

९प्र० अंधा किस कर्म से होय ?

उ० मध्यालय तोड़के सहित निकाले भिंड ततइ या मच्छर को धूआं देके आग लगाके मारे तथा क्षुद्रजीवों को डुबो के मारे तो०

१०प्र० काणा किस कर्म से हो ?

उ० हरे वनस्पति का चूर्ण करे तथा फल फूल वा बीज वींधे तो०

२०प्र० पुत्र पाला पोसा मर जाय किस कर्म से?
उ० धरोड़ मारी होय तो०
२१प्र० पेट में कोई न कोई रोग चला रहे (होता ही रहे) किस कर्म से?
उ० बचा खुचा खा पीके असार (निःसार) भोजन साधु को देवे तो०
२२प्र० बाल विधवा किस कर्म से?
उ० अपने पति का अपमान करके पर पति के साथ रमे तथा कुशीली हो के सती कहावे तो०
२३प्र० वेश्या किस कर्म से?
उ० उत्तम कुल की वड़ बेटी विधवा हुए पीछे कुल की लाज से कोई अकर्तव्य तो न कर ने पावे परन्तु सत्संग के अभाव से भोगों की वांछा रक्खे तो०
२४प्र० जो जो स्त्री व्याहै सो सो मरै कि जिस पुरुष की स्त्री न जीवे किस कर्म से?

उ० ऊट वैल गधे घोड़े के ऊपर ज्यादा बोझ लादे तथा शीत वा गर्मी में रक्खे भूखे प्यासे रक्खे तो०

१७ प्र० सिरसाम अर्थात् चित्तभ्रम किस कर्म से ?

उ० ऊंची जाति वा गोत्र का मान करे तथा छाना (छान्हा) अनाचार मद्यमांसादि भक्षण करके सुकरे तो०

१८ प्र० पथरी रोग किस कर्म०

उ० कन्या तथा वहन बेटी माता स्थान स्त्री से विषय सेवे तथा वज्र कंद मूल २ खाय तो०

१९ प्र० स्त्री पुत्र और शिष्य कुपात्र वैरी समान किस कर्म से ?

उ० पिछले जन्म में उनसे निष्कारण विरोध किया होय तो०

तृतीय गुण व्रतमें अनर्थ दंड अर्थात् नाह
क कर्म बंधका ठिकाना, तिसका त्याग करे॥
वह अनर्थ दंड ४ चार प्रकार का है। सो
१ प्रथम अवझाण चरियं सो आर्त ध्यान अ
र्थात् १ मनोगम पदार्थ के न मिलने की
चिंता॥ २ मनोगम पदार्थ मिलने की
चिंता॥ ३ भोगों के न मिलने की चिंता और
४ रोगों के मिलने की चिंता का कर्ना॥
२ दूसरा रुद्र ध्यान अर्थात् १ प्रथम हिंसानं
द। सो हिंसा रूप कर्म के विचार में ध्यान हो
ना जैसे कि मेरी सोकन तथा सौकन का
पूत किस उपाय से मारा जाय और कब
मरेगा तथा मेरे वैरी का नाश कब होगा
और वैरीके शोक (सोग) कब पड़ेगा तथा
वैरीके घरमें तथा खेतमें आग कब ल
गेगी इत्यादि॥

उ० साधु कहाके स्त्री सेवे तथा त्यागीऊई वस्तु कोफिर ग्रहे तथा खेतमें चरतीहुई गोको त्रासे०

२५प्र० नपुंसक किस कर्मसे?

उ०अति कूट (महाछल) कपट करे तो०

२६प्र० नर्क गतिमें जाय किस कर्मसे?

उ० सातकु सेवे तो०

२७प्र० धनाढ्यकिस कर्मसे?

उ० सुपात्र को दानदेके आनंद पावे तो०

२८प्र०मनोवांछित भोगामिले किस?

उ० परोपकार करे तथा बडोकी टहल करेतो०

२९प्र० रूपवान् किस कर्मसे?

उ० तपस्या करेतो०

३०प्र० स्वर्गमें जाय किस कर्मसे?

उ० क्षमा दया, तप, संयम करे तो०

इति सप्तम व्रतम्॥ अथा ष्टमव्रतम्॥ तथा ३ तृतीय गुण व्रत प्रारम्भः॥

थोड़ा वख़्त वे वख़्त सो रहना यथा निद्रा
४ प्रकारकी है॥
१ स्वल्प निद्रा। २ सामान्य निद्रा। ३ विशेष निद्रा। ४ महा निद्रा॥
१ स्वल्प निद्रा। सो ७ पहर जागना और १ पहर सोना तिसको उत्तम पुरुष कहते हैं॥
और २ सामान्य निद्रा सो ५ पहर जागना और ३ पहर सोना तिसको मध्यम पुरुष कहतेहैं। और ३ विशेष निद्रा सो ४पहर जागना और ४ पहर सोना तिसको जघन्य नर अर्थात् नीच नर कहतेहैं॥
और ४ महा निद्रा सो ३ पहर जागना और ५ पहर सोना तिसको अधम नर कहते हैं परंतु रोगादि कारण की बात न्यारीहै और सूत्रोंके विषय में ५ प्रकार की निद्रा और भाव की कहीहै। सोई जो धर्म कार्यके निमि

श्रोर २ दूसरे मृषानंद। सो झूठ बोलने के तथा झूठा कलंक देने के विचार उपाय रूप॥श्रोर ३ तीसरे चौर्यानंद। सो चोरीके छलके विश्वास में देनके प्रसंग, ठग्गी करने के उपाय विचार रूप॥
श्रोर ४ चौथे संरक्षण नंद। सो धन धान्य के पैदा करने के तथा धन धान्य की रक्षा करने के उपाय विचार रूप॥सो ये श्रार्त्त ध्यान श्रोर रुद्र ध्यान ध्यावने में श्रनर्थ श्रर्थात् नाहक्क कर्म बंध होजाते हैं क्योंकि यथा "निश्चय नय होनहार ना मेटे कोय होनी हो सो होई हो" इतिवचनात्॥

श्रथ २ दूसरा श्रनर्थ दंड

प्रमादा चरण। सो प्रमाद ५ पांच प्रकार काहे तिसका श्राचरण सो प्रमादाऽऽचरण होताहे। सो १ प्रथम निद्रा प्रमाद, सो वे म

न जागनाहै सो उत्तमहै और जो धर्म कार्य सामाजिकादि के वक्तमें सोरहना सोअनर्थदंडहै क्योंकि नीद के वश होके नाहक सामाजिकआदि का लाभ खोदेनाहै इति॥

और २ विकथा प्रमाद सो स्त्रीके रूपआदिक की कथा करनी और देशों के खाने पक्कान्न व्यंजन आदिक की कथा और देशोंके चाल चलन आदि चोरो की जारों की राजाओंकी कथा और तेरी मेरी बातें करनी नाहक्क गाल मारे जाने वेफायदे और शास्त्र स्तोत्र का स्मरण न करना तथा अवतारों के नाम न लेने इत्यादि॥

और ३ तीसरे विषय प्रमाद सो बाग बगीचे नाटक चेटक राग रंग देखने को जाना और पराए वर्ण गंध रस स्पर्श देख के हुलसना कि आहा। क्या अच्छा है हम